सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमंग'

चुल्लू भर पानी



चुल्लू भर पानी

हास्य-व्यंग्य



अभिरुचि प्रकाशन, दिल्ली-32

चुल्लू भर पानी

सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमंग'

मूल्य : सौ रुपये / प्रथम संस्करण, 2000 / आवरण-शिल्पी : सत्यसेवक मुखर्जी / प्रकाशक : अभिरुचि प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वासनगर, दिल्ली-110032 / शब्द-संयोजक : विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032 / मुद्रक : पवन ऑफसेट, दिल्ली-32

CHULLU BHAR PAANI : Satya Prakash Aggarwal 'Umang' Rs. 100.00

समर्पित

उस परम पिता परमेश्वर को,
जो बड़ी ईमानदारी से,
नियमानुसार
जन्म-जन्म से मेरे अच्छे और बुरे
कर्मों का प्रतिफल मुझे देता
चला आ रहा है।

लिखित पूर्वानुमति के अभाव में इस संकलन की सामग्री का प्रयोग या उपयोग कानूनी पेचीदगियां पैदा कर सकता है अतः प्रस्तुत संकलन की किसी भी व्यंग्य कथा, उसके कथानक, कथानक के किसी अंश अथवा संवाद आदि का प्रयोग करने से पूर्व लेखक की अनुमति अवश्य लें–

–सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमंग'

रघु भवन
1127, पी. एल. शर्मा रोड
मेरठ–250001

दो शब्द



'चुल्लू भर पानी' व्यंग्य-कथा-संग्रह की शृंखला की दूसरी कड़ी है। मुझे भली प्रकार ज्ञात है कि चुल्लू भर पानी में डूब मरने की ताव आधुनिक जमाने में किसी की भी नहीं रह गई है। आज का इंसान चुल्लू भर पानी डकार तो सकता है, चाहें तो उसे खिंडा भी सकता है लेकिन चुल्लू भर पानी में जो उच्च स्तरीय शर्मोहया होती है उसमें डूब नहीं सकता। मरना तो बहुत दूर की बात है। फिर भी चुल्लू भर पानी का चलन राष्ट्र के नैतिक स्वास्थ्य के लिए निहायत ही मुफीद है। जितना इसका उपभोग होगा उतना ही राष्ट्रीय नैतिकता पुष्ट होगी। इसी विश्वास के साथ मैंने इस संग्रह का नाम इसकी एक व्यंग्य कथा के नाम पर 'चुल्लू भर पानी' रखा है।

व्यंग्य विधा की क्या ऐतिहासिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि रही है, यह मेरे सोचने-समझने का विषय कभी नहीं रहा है। यह मनीषियों का कार्य-क्षेत्र है। मेरा कार्य-क्षेत्र मात्र यह रहा है कि विभिन्न परिस्थितियों में मान्यताएँ, विचारधाराएँ, धारणाएँ और दृष्टिकोण जो भिन्न कोण रखते हैं उनसे भी वस्तु-स्थिति पर प्रकाश पड़ना चाहिए, उन दृष्टिकोणों को भी समझा-बूझा जाना चाहिए और यदि व्यंग्य इस

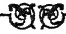
प्रयोजन के लिए एक सक्षम माध्यम है तो मुझे व्यंग्य-लेखन प्रिय है, स्वीकार्य है। जहाँ बिना व्यंग्य विधा के भी बात कही और समझी जा सकती है, उसे मैं सीधे-सपाट तरीके से भी कहना चाहूँगा, बशर्ते उसमें सरसता हो, रोचकता हो और रोमांच का पुट निरन्तर आँख-मिचौनी खेल रहा हो।

आखिरकार आधुनिक तनावग्रस्त जीवन को हम व्याख्यान तो नहीं पिला सकते। आज तो यदि समाज के साथ कदम-से-कदम मिला कर चलना है तो साहित्यकार को ऐसी साहित्यिक विधा का आविष्कार करना होगा जो पाठक के तनावग्रस्त जीवन पर सुखद मरहम का लेप बनकर छा जाए। उसे गुदगुदाए, सहलाए, आन्दोलित करे, रोमांचित करे और इस प्रक्रिया में अनजाने में ही उसकी विचारधारा को अपने अनुकूल कर ले। मैं इसी साधना में प्रयासरत हूँ। कहाँ तक सफल हुआ हूँ, कहाँ तक सफल हो सकूँगा—आप बताएँगे। हाँ, मेरे पूर्व व्यंग्य-कथा-संग्रह 'भ्रष्टाचार की पाठशाला' के पाठकों ने जरूर मुझे प्रोत्साहित किया है। उन्होंने चर्चा की है, पत्र लिखे हैं और मुझसे आशाएँ बाँध ली हैं। इसी का सफल परिणाम है कि आज मैं 'चुल्लू भर पानी' आपके हाथों में पहुँचा सका हूँ। अगर आपका इसी प्रकार सहयोग और प्रोत्साहन मिलता रहा तो शायद आगे भी आपकी सेवा कर सकूँ, इस विश्वास के साथ यह व्यंग्य-कथा-संग्रह आपको सौंप रहा हूँ।

सत्यप्रकाश अग्रवाल 'उमंग'

'रघु-भवन'
पी. एल. शर्मा रोड
मेरठ

अनुक्रम



चुल्लू भर पानी



उस महान् नेता ने चुल्लू भर पानी में डूब मरने की ठान ली थी। नेता जी जीवन पर्यंत सार्वजनिक रहे थे। अपने को सार्वजनिक संपत्ति समझते थे और सार्वजनिक संपत्ति को अपनी संपत्ति। अतः इस अंतिम आयोजन को भी सार्वजनिक करने से न चूके। सारे शहर को आमंत्रित कर लिया। स्थान, सभा और भोजन की व्यवस्था की और समय और तिथि की घोषणा करवा दी।

नेता जी के डूव मरने की योजना की खबर शहर में बाढ़-सी फैल गयी। शहर आश्चर्य में गोते खाने लगा। होड़-सी लग गयी कि पहले कौन डूबे। नेताजी के इस कदम को विरोधियों ने भी सराहा। सच पूछो तो जमकर उन्होंने ही सराहा। ठीक समय पर नैतिक समर्थन देने पहुंच गये। चिरकालीन विरोधी नेता से इस तरह सहज छुटकारा मिलने की उन्होंने कल्पना तक न की थी। इससे अभिभूत हो उन्होंने अंतिम क्षणों में विरोधी की जय-जयकार करने की भी ठान ली। आखिर को श्रीराम ने भी जब रावण से छुटकारा पाया था तब उसे अमरत्व प्रदान कर दिया था।

विरोधियों और समर्थकों की एकजुट भीड़ को देखकर नेताजी

आत्मविभोर हो गये। इस ऐतिहासिक घटना की साक्षी को सारा शहर एकत्र हो गया था। लगता था जैसे जन-सैलाब उमड़ आया हो। इस अथाह जन-सागर को देख नेताजी की आत्मा तृप्त हो गयी। अंतिम क्षणों में सही, आज सारा शहर उनके साथ था। मंत्रमुग्ध हो उन्होंने माइक संभाला और हृदय की गहराइयों से स्वर उठाया, "मेरे प्रिय नगरवासियो, आप यह जरूर जानना चाहेंगे कि आखिर आपके प्रिय नेता ने चुल्लू भर पानी में डूब मरने का यह कठोर निर्णय क्यों लिया? आखिर ऐसे क्या हालात पैदा हुए, क्या समस्याएं आयीं कि मैं आज आपके सामने डूब मरने के लिए सहर्ष तत्पर हूं और वह भी चुल्लू भर पानी में? इन अंतिम क्षणों में मैं आपसे झूठ नहीं बोलूंगा। कहते हैं वैसे भी मरता हुआ आदमी कभी झूठ नहीं बोलता। इसलिए कोर्ट भी डाइंग-डिक्लेरेशन को पूर्ण मान्यता और सम्मान देती है। मैं स्वेच्छा से आपसे वादा करता हूं कि जीवन के इन अंतिम क्षणों में मैं आपसे जो कुछ कहूंगा, सच कहूंगा और सच के अलावा कुछ नहीं कहूंगा।"

कहकर नेताजी कुछ क्षण को रुके। उनका गला भर आया था। पहली बार सच बोलने के लिए, उन्हें विशेष प्रयत्न करना पड़ रहा था। भीड़ ने सांसें रोक ली थीं। नेताजी के मुंह से झूठ सुनने की तो वह अभ्यस्त थी, आज पहली बार सच सुनने के लिए उसे भी अपने आपको तैयार करना पड़ रहा था।

नेताजी ने पुनः प्रारंभ किया, "मित्रो, आपने मुझे चुनाव जितवाया—केवल अपने स्वार्थ के लिए। आप मुझसे अपने देश का, अपने नगर का और अपना विकास करवाना चाहते थे। इसमें भी पहले अपना, फिर अपने नगर का और बाद में देश का। आपने जब मुझे अपनी वोट देकर जिताया तो क्या आपके मन में यह आकांक्षा नहीं थी कि मैं आपके काम आऊंगा। जैसे वोट देते समय आपके मन में कुछ आकांक्षाएं थीं, उसी तरह वोट लेते समय मेरे मन में भी कुछ आकांक्षाएं थीं, अपने लिए। आप कहते हैं कि मैं आपकी आशाओं पर खतरा नहीं उतरा। ठीक है, पर क्या आपको पता है कि अभी तक मैं अपनी आकांक्षाओं पर भी खरा नहीं उतर सका हूं। आपका यह आरोप सही है कि चुनाव के लिए तैयार होने से पहले मैंने अपने

आपसे, अपनी धर्मपत्नी से, अपने बच्चों से और अपने सगे-संबंधियों एवं इष्ट मित्रों से जो वादे किये थे वे भी मैं अभी तक कहां पूरे कर सका हूं। आपके वादे निभाने का नंबर तो तब आता जब मैं अपने और अपनों के वादे पूरे कर लेता।''

जन-सभा नेताजी की स्पष्टोक्ति से प्रभावित हुई लगती थी। उसमें पूर्ण मौन छा गया था। शायद आत्म-मंथन कर रही थी—'पहले किसके स्वार्थ पूरे होने चाहिए, नेताजी के या उसके?'

नेताजी आगे बढ़े, ''लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मैंने विकास के लिए कार्य नहीं किया। आपसे किये वादों को पूरा करने की चेष्टा नहीं की। सच तो यह है कि मैंने विकास के लिए सारे घोड़े खोल दिये। भरसक प्रयत्न किये पर एक साथ, एक ही रात में तो सारा देश, सारा नगर विकसित नहीं हो सकता। आखिर पौधे को भी पेड़ बनने में समय लगता है। मेरी योग्यता देखिये कि मैंने तरक्की की शुरुआत एक सिरे से प्रारंभ की। गलती न हो जाये इसलिए हर प्रयोग पहले अपने से शुरू किया। पर हाय, मेरे प्यारे नगरवासियो, आप मुझे ठीक से नहीं समझ पाये। विकास का यह प्रयोग जब मेरे और मेरे परिवार पर सफल हो जाता तब आप सब लोगों का भी क्रम से नंबर आना था। लेकिन आपने धीरज खो दिया। मेरी टांगें खींचने लगे। आपसे इंतजार नहीं हुआ। अब ऐसे समाज, ऐसे नगर में मेरा तो डूब मरना ही श्रेयस्कर है।''

नेताजी के डूबने से पहले जन-समुदाय आत्मग्लानि में डूब गया—'जहां पचास साल इंतजार किया था, अगर कुछ और इंतजार कर लिया जाता तो क्या बिगड़ जाता। आखिर नेताजी सुनियोजित ढंग से विकास कार्यों में ही तो जुटे थे। एक के बाद एक कभी-न-कभी नंबर आ ही जाता।'

नेताजी फिर बोले, ''देखिये, लोग कहते हैं कि हमने विदेशों से कमीशन खाया। भाइयो, और कोई मौका होता तो मैं कहता कौन कहता है। सब झूठ है। लफ्फाजी है। बकवास है। कोई सिद्ध करके तो दिखा दे। और सचमुच कोई सिद्ध करके नहीं दिखा पाता क्योंकि सिद्ध करनेवाली सभी एजेंसियां हमारे ही अधीन हैं। लेकिन जीवन के

इन अंतिम क्षणों में मैंने यह सौगंध उठायी है कि मैं आपसे सच कहूंगा। झूठ नहीं बोलूंगा और इसलिए मैं यह स्वीकारता हूं कि हमने विदेशी कमीशन खाया है। एक बार नहीं, कई बार खाया है। छोटा नहीं, मोटा खाया है। लेकिन मैं पूछता हूं इसमें हमने क्या बुरा किया है? क्या गलत किया है? देश का माल विदेशों में न चला जाये इसलिए जितना बन पड़ा कमीशन काट-काटकर जाने से बचा लिया। हमने अपने देशवासियों से तो कमीशन नहीं खाया। अगर विदेशियों से कमीशन खाया तो इसमें अपने देशवासियों का क्या बिगड़ा। अपने देश में तो कुछ आया ही। कुछ गया तो नहीं। मेरी समझ में यह आज तक नहीं आया कि हम जो काम देशहित में भी करते हैं उसमें भी कुछ विरोधी लोग बुराइयां क्यों ढूंढ़ने लगते हैं।''

भीड़ अवाक् थी। नेताजी की स्वीकारोक्ति अपने बलिष्ठ तर्कों से भीड़ के संदेहों का गला दबा रही थी। भीड़ यह तर्क समझने के लिए विवश हो रही थी कि वह नाहक ही विदेशी कमीशनों को घोटाला समझे बैठी थी। अरे भाई, कमीशन तो मिला ही है न, देश से बाहर तो नहीं गया। अब वह चाहे देश को मिले, देश की जनता को मिले या देश के नेता को मिले। इससे क्या ज्यादा फर्क पड़ता है।

नेताजी ने एक सांस लेकर पुनः प्रारंभ किया, ''अब यह कितनी गलत बात है कि हमारा न्याय न्यायाधीश करें, हम भी न्यायालयों से ही न्याय प्राप्त करें। अरे, हम तो हर पांच साल बाद जनता के न्यायालय में जाते हैं। उससे न्याय प्राप्त करते हैं। वह कहती है तो हम सरकार बनाते हैं। वह निर्णय देती है तो हम उस पर शासन करते हैं। अब यह कहां तक सही है कि हमारे ही न्यायालय, हमारे ही नियुक्त किये गये न्यायाधीश हमारा न्याय करने लगे। भई, जब जनता के न्यायालय ने पांच साल को सत्ता की बागडोर हमारे हाथों में सौंप दी तो फिर बीच में यह न्यायालयों की रोक-टोक क्यों। हम पांच साल स्याह करें या सफेद करें। यह रोक-टोक तो नाकाबिले बर्दाश्त हो रही है। ऐसे में, हम सब कुछ छोड़-छाड़कर, डूब न मरें तो क्या करें!''

भीड़ स्तब्ध हो सुन रही थी।

नेताजी ने फिर हुंकारा, ''देखिये, हम जन-प्रतिनिधि हैं। आप

जनता हैं और हम आपके प्रतिनिधि हैं। प्रतिनिधि यानी दूत। हमारे देश की, हमारी संस्कृति की यह गौरवशाली परंपरा रही है कि यहां दूत को, प्रतिनिधि को कुछ नहीं कहा जाता है। बड़े-बड़े राजदरबारों ने बड़ी-बड़ी ऊल-जलूल हरकतें कीं, किन्तु राज प्रतिनिधि होने के कारण उन्हें क्षमा कर दिया गया था। रामायण में हनुमान श्रीराम के दूत बनकर गये तब रावण तक ने उनकी अक्षम्य हरकतों को प्रतिनिधि होने के कारण ही अभयदान दिया था। फिर हम भी तो प्रतिनिधि हैं—जन प्रतिनिधि। आपके प्रतिनिधि। फिर हमें न्यायालयों में क्यों घसीटा जा रहा है। क्या हमारा देश सभी प्राचीन परंपराएं भुला बैठा है। आप ही बताइये, इन हालात में हम क्या करें? डूब मरने के अलावा कोई और ठौर है?''

सभा में पिन-ड्रॉप छा गया। सभी नेताजी के दुःख से द्रवित हो चले थे और उनके बेबाक तर्कों से किंकर्तव्यविमूढ़।

नेताजी ने फिर क्रम पकड़ा, ''साथियो, अब आपके मन में प्रश्न उमड़े होंगे कि आखिर हमने चुल्लू-भर पानी में ही डूब मरने का निर्णय क्यों लिया? डूब मरने के लिए समुद्र था, नदी थी, तालाब था, कुआं था, नगरपालिका का टैंक था और यह सब भी अगर कुछ दूर थे तो बाथरूम में बाथ-टब तो था ही। फिर इन सबको छोड़कर हमने चुल्लू भर पानी को ही क्यों अपनाया। दोस्तो, इन अंतिम क्षणों में भी हम आपको एक बार फिर विश्वासपर्वूक बता देना चाहते हैं कि हम आपकी समस्याओं से अनभिज्ञ नहीं हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि हमें आपकी समस्याओं का ज्ञान न हो, हम अनभिज्ञ हों और अंधेरे में ही भटक रहे हों। हमें आपकी समस्यायें हमेशा ज्ञात रही हैं। यह बात और है कि हम कभी उनका निराकरण नहीं कर सके। अब जाते-जाते आपकी किसी समस्या में वृद्धि करें, यह हमें शोभा नहीं देता। हमें पता है कि पानी का अभाव भी आपकी ज्वलंत समस्या है। हमेशा रही है और आज भी है। इसका निराकरण हम नहीं कर सके इसलिए अपने अंत समय में एक टब, एक टैंकर पानी महज अपने डूबने के लिए बरबाद करने की ताब हम नहीं ला पाए। हम सब केवल चुल्लू भर पानी से काम चलाना चाहते हैं। शेष पानी, मेरे देशवासियो, आपके लिए छोड़

दिया है। चाहे जैसे इस्तेमाल करें और मौज मनायें।''

जन समुद्र करतलध्वनि से गूंज उठा। सभी के मुंह से निकल रहा था—''वाह, वाह ! क्या बात है?'' नेताजी के इन अंतिम क्षणों के महान त्याग ने सभी को अभिभूत कर दिया था।

इस मौके पर नेताजी के एक परम प्रिय समर्थक से न रहा गया। वह दौड़कर मंच पर चढ़ गया। नेताजी से माइक झटक लिया और चीखा, ''भाइयो, हमने अभी नेताजी का महान त्याग देखा। क्या हमें इनके लिए कुछ भी नहीं करना चाहिए? मेरा प्रस्ताव है कि हम उनसे अनुरोध करें कि वह डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी का नहीं, चुल्लू भर गंगाजल का प्रयोग करें। इस तरह उनकी आत्मा को शांति मिलेगी और उनकी प्रिय जनता को राहत।''

भीड़ ने प्रस्ताव का पुरजोर समर्थन किया। बहुत से लोग चिल्ला उठे, ''ठीक है, ठीक है। गंगाजल लाओ। गंगाजल लाओ।''

तभी जन-सैलाब से एक और आवाज उभरी, ''नहीं, केवल गंगाजल नहीं। सात नदियों का जल होना चाहिए।'' यह कहते हुए एक व्यक्ति तेजी से मंच की ओर लपका। यह सज्जन नेताजी के प्रिय समर्थक के घोर प्रतिद्वंद्वी थे। नेताजी के प्रयाण के अंतिम क्षणों में उनका प्रतिद्वंद्वी बाजी मार ले जाये यह उन्हें फूटी आंख नहीं भाया था। इसलिए उन्होंने तुरंत नहले पर दहला जड़ दिया। माइक से घोषणा की, ''मैं स्वयं सात नदियों का पवित्र जल लेकर आऊंगा जिसके चुल्लू भर पानी में हमारे प्रिय नेता अपनी अंतिम इच्छा पूरी करेंगे। यह काम मैं जल्द से जल्द करूंगा। तब तक के लिए मेरी जनता से प्रार्थना है कि वह नेताजी से डूब मरने का कार्यक्रम स्थगित रखने का अनुरोध करें।''

जनता इन क्षणों तक नेताजी से पूर्ण प्रभावित हो चली थी। यह बेचारी जनता की पुरानी आदत जो ठहरी। फिर आयोजित भोज के लिए देरी भी हो रही थी। अतः उन्होंने उच्च स्वर में अनुरोध दोहरा दिया। नेताजी ने जनता की बात कभी नहीं टाली थी। अगर सही कहा जाये तो जनता की बात टालना उन्हें आता ही नहीं था। फिर उस अथाह जन-सागर की बात तो वह टाल ही नहीं सकते थे। अतः उन्होंने

जन-अनुरोध के आगे तुरंत सिर झुका दिया।

सात नदियों का जल एकत्र होने तक, चुल्लू भर पानी में डूब मरने का कार्यक्रम स्थगित हो गया। नेताजी के समर्थक अब सात नदियों का पानी एकत्र करने में लगे हैं। देखना है कि वह कब तक इकट्ठा हो सकेगा और कब इस देश के नेताजी चुल्लू भर पानी में डूबकर दिखायेंगे।

जीता कौन?



'दौड़ में कछुआ खरगोश को हरा देता है'—यह उक्ति सुनते-सुनते जब कान पक गये तो एक युवा खरगोश तैश खा गया। न जाने वह कौन-सा पूर्वज था जो बीच दौड़ में सो गया और हमेशा-हमेशा के लिए खरगोश जाति के मुंह पर कालिख पोत गया! भला कहां कछुआ और कहां खरगोश ! एक बीस बार पैर मारकर मुश्किल से छह इंच सकरता है और दूसरा एक छलांग में कई गज नाप देता है। फिर भी सदियों से हारा हुआ कहलवाता चला आ रहा है। है न घोर अनर्थ! घोर नाइंसाफी! वह भी मात्र एक पूर्वज की गलती के कारण। न जाने नशा करके दौड़ा था या ड्रग डकार ली थी। या फिर अपनी टांगों की उछाल और रफ्तार के नशे में चूर हो गया था। बीच दौड़ में टांगें पसार कर बेफिक्र सो गया और अब कलंक का बोझ सारी कौम ढो रही है। कोई बात हुई भला! आहत खरगोश ने इस सदियों पुराने कलंक को धोने की ठान ली और शहर के कछुओं से भरे सबसे बड़े तालाब के किनारे जा एक बार फिर से दौड़ की चुनौती दे डाली।

चुनौती की गर्जना सुनकर कछुए स्तब्ध रह गये। मुंह से एक बोल भी नहीं फूटा। उत्तर ही नहीं सूझा। दौड़ में अच्छी-खासी प्राचीन ख्याति

चली आ रही थी। आज यह कौन सिरफिरा चुनौती देने आ पहुंचा। हर कछुए ने जब से होश संभाला था खरगोश से दौड़ जीतने का तमगा गले में लटका पाया था। अब इसे दोबारा सिद्ध करने की क्या जरूरत आ पड़ी। एक बुजुर्ग कछुए ने बात टालने की कोशिश की, "भाई खरगोश, अब दौड़ की क्या जरूरत है, दौड़ जो होनी थी हो चुकी। सारे जमाने को उसके नतीजे का पता है। अब बार-बार तो दौड़ नहीं होती।"

"कैसे नहीं होती! वह दौड़ एक धोखा थी, फरेब थी। हमारी जात को बदनाम करने का षड्यंत्र था। मैं उस दौड़ को नहीं मानता। अगर तुम दौड़ में सचमुच जीत सकते हो तो आओ मुझसे जीतकर दिखाओ।" खरगोश आपे से बाहर हो गया।

तैश खाने में कुछ नहीं रखा था। अतः बुजुर्ग कछुए ने शालीन तर्क प्रस्तुत किया, "देखो, तुम जवान खून हो। हम वृद्ध हो चुके हैं। अब तुमसे क्या दौड़ लगायेंगे। जवानी में कुछ कहते तो सोचते भी।"

"बनो मत, खून तो तुम्हारे यहां भी जवान है। सारे कछुए वृद्ध नहीं हुए हैं। मैं तो किसी भी एक से दौड़ लगाने को तैयार हूं। है कोई माई का लाल कछुओं में!" खरगोश ने ताल ठोककर दो बार उछाल भरी।

माई के लाल तो सभी थे लेकिन अवसर इसका दावा करने का नहीं था। कछुए जितना बचना चाह रहे थे, खरगोश उतना ही लपेट रहा था। चुनौती स्वीकार करने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता था। इस बात की क्या गारंटी थी कि इस बार भी खरगोश वही पुरानी गलती को दोहरायेगा। खामखाह इतिहास बदल जायेगा। कहावत उलट जायेगी। मुंह काला हो जायेगा। चुनौती उठाने का अर्थ था—आ बैल मुझे मार। निर्बलता के दामन में संतोष मशरुम की तरह बढ़ता रहता है। सो, जब्त खाकर बचाव का पैंतरा फेंका, "भाई, हम झगड़े-फसाद में विश्वास नहीं करते। जैसे चल रहा है वैसे ही चलने दो। हमें अब कोई दौड़ नहीं लगानी।"

लेकिन खरगोश तो ठानकर आया था कि जैसा चल रहा है वैसा नहीं चलने देगा। पूर्वजों का कलंक तो वह धोकर रहेगा। वह गरजा,

''लगानी कैसे नहीं है। अगर दौड़ नहीं लगानी तो हार माननी पड़ेगी। घोषणा करनी होगी कि खरगोश से दौड़ हार गये। अब कभी कछुए को दौड़ में खरगोश से जीता हुआ नहीं समझा जायेगा।''

कछुए चुप्पी साध गये।

अब अचानक खरगोश को अपनी भूल का एहसास हुआ। उसे 'प्रेस' को साथ लाना चाहिए था। कोई संवाददाता होता जो उसकी इस दमदार चुनौती को न्यूज में फ्लैश करता। टी.वी. पर भी देता। अगर कछुए इसी तरह टाल-मटोल करते रहे तो कैसे होगी दौड़? कैसे हो सकेगा खरगोश जाति का मुंह उजला? कैसे धुलेगी परंपरागत कालिख? उसकी चुनौती को, प्रस्तावित दौड़ को और उसके परिणाम को पूरे प्रचार-प्रसार की जरूरत थी। स्थानीय या राष्ट्रीय नहीं, अंतर्राष्ट्रीय जगत में भी। उस कलमुंही कहावत का भी तो विभिन्न भाषाओं में अनुवाद होकर सदियों से जमकर प्रचार हुआ है। अतः सोच-समझकर खरगोश ने नया पासा फेंका, ''मैं कल फिर इसी समय आऊंगा। इस बार मेरे साथ प्रेस और फोटोग्राफर भी होंगे। अगर कोई कछुआ दौड़ लगाने के लिए राजी नहीं हुआ तो समझ लो कहावत बदल जायेगी। देश-विदेश के अखबारों में छपेगा कि अब खरगोश कछुए से दौड़ जीत गया है। खुली चुनौती के बाद भी कोई कछुआ दौड़ में खरगोश को नहीं हरा सका। वह गलत कहावत कोई तुम्हारी जागीर नहीं है जिसका फायदा तुम लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी उठाते चले जाओगे।''

खरगोश तो उफनता-बिफरता अगले दिन आने के लिए कहकर लौट गया, लेकिन कछुओं की चेतना घंटों तक नहीं लौटी। बैठे-बिठाये किस मुसीबत में पड़ गये। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। ये अचानक खरगोश की मति कैसे फिर गयी। गहन मंत्रणा करने के लिए सभी कछुए अपने मुखिया के चारों ओर सिमट आये।

चिंतातुर मुखिया की वाणी गंभीर हो गयी थी, ''यह हमारे लिए घोर संकट की घड़ी है। लगता है यह खरगोश बिना दौड़ लगाये नहीं मानेगा और हम इस दौड़ को जीत नहीं सकते। मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।...हां, इस संकट में अगर हमारी कोई सहायता कर सकता है तो वह है 'मनुष्य'। उसमें सोचने-समझने की ताकत हमसे कुछ

ज्यादा है। ईश्वर ने उसके मस्तिष्क का आकार-प्रकार हमसे बड़ा और ज्यादा पेचीदा बनाया है। उसमें दिन-रात नयी-नयी खुराफातें पकती रहती हैं। अगर वह हमारी सहायता करना चाहे तो कोई-न-कोई जुगाड़ जरूर निकाल लेगा।''

''लेकिन मनुष्य जाति तो बहुत लालची होती है। बिना फायदा देखे तो एक फली भी नहीं फोड़ती। हमारी सहायता क्यों करेगी?'' एक बुजुर्ग कछुए ने टोका।

मुखिया बुजुर्ग से सहमत था। बुजुर्ग कुछए ने सवासोलह आने सच कहा था। उसके अपने अनुभव का यही निचोड़ था। लेकिन इस बार प्रश्न इतना विकट था कि कछुआ जाति हर ओखली में सिर देने को तैयार थी। सब कुछ दांव पर लगा था : पूर्वजों की इज्जत, गौरवशाली परंपरा, उज्ज्वल इतिहास। अतः उसने भी खुलकर खेलने की ठान ली। तालाब में डुबकी लगायी और तलहटी में छिपायी स्वर्ण मुद्राओं की थैली निकाली लाया। यह स्वर्ण मुद्राओं की थैली पांच सौ वर्ष पूर्व एक श्रेष्ठी की गांठ से उस समय निकलकर तलहटी में पहुंच गयी थी जब वह इस प्राचीन तालाब में डुबकियां लगा रहा था। इस थैली की खोज मुखिया के पूर्वजों ने की थी और तभी से यह एक पुश्तैनी धरोहर बनकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसके परिवार के पास चली आती थी। लगता था शायद आज उसके सदुपयोग का उचित अवसर आ गया था।

स्वर्ण मुद्राओं की थैली लेकर कछुओं का मुखिया मनुष्य जाति के प्रसिद्ध वकील तिकड़मदास के पास पहुंचा। रो-रोकर अपनी सारी व्यथा सुनायी और सहायता के लिए पुरजोर गुहार की। नामी वकील तिकड़मदास ने मुंह टेढ़ा कर लिया। उलाहना दिया, ''कछुए होकर खरगोश से दौड़ जीतना चाहते हो! खरगोश की छलांग देखी है कभी?''

कछुए ने तिकड़मदास के सामने स्वर्ण मुद्राओं की थैली खोल दी। थैली खुलते ही स्वर्ण मुद्राएं बिखरकर फैल गयीं। तिकड़मदास ने आंखों ही आंखों में गिनती कर ली। खरे सोने की पूरी इक्कीस मुद्राएं थीं। सहज स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई। उसकी आंखों में चमक और आवाज

में सहानुभूति उमड़ पड़ी, "तुम मुझसे आखिर क्या चाहते हो?"

तिकड़मदास ने दो मिनट सोचा। फिर स्वर्ण मुद्राएं बटोरीं और बोला, "जाओ, तुम्हारी इज्जत बची रहेगी। अब जब खरगोश आये तो उसे मेरे पास ले आना। कहना कि यह प्रतियोगिता मेरी देख-रेख में होगी। बाकी सारी बात मैं संभाल लूंगा। तुम निश्चिंत रहो।"

कछुआ और बहुत सारी बातें कहना और जानना चाहता था, लेकिन तिकड़मदास आगे कुछ भी बोलने-बताने के मूड में नहीं थे। अतः कछुआ मन मसोसकर वापस लौट आया।

उसको यह नहीं बताया गया था कि तिकड़मदास सारी बात कैसे संभालेगा? जब सारी कौम पर संकट हो तब भला मौखिक आश्वासन से मुखिया कैसे निश्चिंत हो सकता था। उसे तो यह भी नहीं बताया गया था कि दौड़ होगी या नहीं? दौड़ हुई तो जीत कैसे होगी? मुखिया के साथ-साथ सारी जाति चिंतित थी। एक ने कह ही दिया, "मुझे तो लगता है कि स्वर्ण-मुद्राएं बेकार ही गयीं। मनुष्य भला खरगोश से हमें कैसे जितायेगा! हमारी जगह खुद तो दौड़ने से रहा।"

सुनकर मुखिया ने आंखें तरेरीं, 'तू अभी मनुष्य स्वभाव को नहीं जानता। पैसे की खातिर वह सब कुछ कर सकता है। आज के दिन उसमें कहीं ईमानदारी बाकी है तो बस बेइमानी के कामों में ही। तू देखता रह, स्वर्ण मुद्राएं बेकार नहीं जायेंगी अपना तिकड़मदास कोई न कोई तिकड़म भिड़ाकर रहेगा।"

अगले दिन जब खरगोश आया तो कछुआ उसे तिकड़मदास के पास ले गया। खरगोश अपने साथ दो प्रेस-संवाददाता भी लाया था। खरगोश अपनी जीत के लिए इतना आश्वस्त था कि तिकड़मदास को इस दौड़ का रैफरी बनाने में भी उसे कोई एतराज नहीं हुआ।

तिकड़मदास रैफरी ने प्रतियोगता की शर्तें गिनानी प्रारंभ कीं—"यह एक लंबी दौड़ होगी, जिसमें प्रतियोगी मेरठ से दौड़ना शुरू करके दिल्ली तक की चौंसठ किलोमीटर की दूरी एक बार में तय करेंगे।"

"मुझे मंजूर है, लेकिन इस दौड़ के विजेता के गले में फूलों की माला डालकर उसका फोटो खींचा जाना चाहिए, जो अखबारों में भी

छपना चाहिए और टी.वी. न्यूज में भी दिखाया जाना चाहिए।'' खरगोश ने अपना प्रस्ताव रखा। वह निश्चित जीत का कल्पना-चित्र साकार देख रहा था।

तिकड़मदास ने दूसरी शर्त रखी, ''मेरठ की सीमा से दौड़ शुरू कराकर हम कार से प्रेस फोटोग्राफर को लेकर दिल्ली पहुंचेंगे। जो प्रतियोगी चौंसठ किलोमीटर दौड़कर दिल्ली सीमा रेखा पर पहले पहुंचेगा, उसे ही विजेता घोषित किया जायेगा।''

खरगोश ने दूसरा प्रस्ताव किया, ''विजेता की घोषणा विदेशी अखबारों में भी छपनी चाहिए।''

तिकड़मदास ने तीसरी शर्त रखी, ''पहले पहुंचनेवाले प्रतियोगी को विजेता घोषित किया जायेगा। यह घोषणा अंतिम और सर्वमान्य होगी। इसकी कोई अपील नहीं होगी। इस दौड़ में हारे हुए प्रतियोगी को या उसकी काम के किसी भी सदस्य को फिर कभी भविष्य में दूसरे प्रतियोगी की कौम को दौड़ के लिए चुनौती देने का अधिकार नहीं रह जायेगा। कछुओं और खरगोशों के बीच यह सदा-सदा के लिए अंतिम और मान्यताप्राप्त मुकाबला होगा।''

खरगोश खुशी से झूम उठा। यही तो वह चाहता था। उसने भी तीसरा प्रस्ताव रखा, ''क्या इस प्रतियोगिता की टी.वी. कवरेज नहीं हो सकती?''

''केवल अंतिम स्थल पर विजय के क्षणों की टी.वी. कवरेज करायी जायेगी।'' यहां भी तिकड़मदास ने खरगोश का मन रख लिया था।

प्रतियोगिता का दिन और समय तय करके सभी चले गये थे लेकिन कछुओं का मुखिया अभी भी सिर झुकाये चिंताग्रस्त खड़ा था। चाहकर भी वह स्वर्ण मुद्राओं के साथ अपनी चिंता मनुष्य को स्थानांतरित नहीं कर सका था। वकील तिकड़मदास ने उसे देखा, मुसकराया और बोला, ''कल हम तालाब के किनारे स्वयं आयेंगे और बतायेंगे कि कछुओं की ओर से इस दौड़ में कौन दौड़ेगा। अब तुम जाओ।''

मनुष्य के पेचीदा मस्तिष्क और अपनी खरी स्वर्ण मुद्राओं पर

हठपूर्वक आस्था जमाये, विवश मुखिया लौट आया। अगले दिन वकील साहब टहलते हुए आये और कछुओं के प्रतियोगी का चुनाव कर गये। जो कुछ वकील साहब ने समझाया वह भी कछुओं ने भली प्रकार समझा। दो हमशक्ल जुड़वां कछुओं में से एक ने उसी समय प्रतियोगिता की अंतिमं सीमा रेखा पर डेरा जमाने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया।

निश्चित दिन, निश्चित समय पर, निर्धारित स्थान से दौड़ प्रतियोगिता प्रारंभ हुई। पहली ही छलांग में खरगोश ने कछुए से लीड ले ली। प्रतियोगिता रैफरी तिकड़मदास की कार मय फोटोग्राफ़र और प्रेस संवाददाताओं के चंद मिनटों में ही खरगोश से भी आगे निकल गयी। जब गुब्बार उड़ाती कार खरगोश के बाजू से गुजरी तो खरगोश ने ठहरकर पीछे मुड़कर देखा। बेचारा कछुआ तेजी से हाथ-पैर मारता हुआ धीरे-धीरे सरकता चला आ रहा था। निश्चिंत होकर खरगोश दौड़ लगाने लगा। इस बार उसने रिकार्ड समय में चौंसठ किलोमीटर की दूरी तय करने की ठान रखी थी। रास्ते में सोना छोड़ एक मिनट को सुस्ताने का भी प्रोग्राम नहीं था। थकान मिटाने के लिए उसने कमर भी सीधी नहीं की। बस जीत की धुन में तेजी से दूरी नापता रहा। उसे जीत के साथ-साथ एक रिकॉर्ड भी कायम करना था।

लगभग छह घंटे दौड़कर जब खरगोश दिल्ली की निर्धारित सीमा पर पहुंचा तो वहां का दृश्य देखकर गश खा गया। कछुए के गले में विजय-माला पड़ी थी और प्रेस फोटोग्राफर उसके विभिन्न कोणों से फोटो खींच रहे थे। प्रतियोगिता-रैफरी तिकड़मदास वकील घंटों पहले कछुए को विजेता घोषित कर चुके थे। इस बार फिर खरगोश दौड़ में कछुए से हार गया था। प्राचीन कहावत ज्यों-की-त्यों बनी रही थी– 'दौड़ में खरगोश कछुए से हारता है।' यह सब कैसे हुआ, यह युवा खरगोश की समझ से परे था।

तालाब किनारे कछुओं ने मिठाई बांटी। एक कछुआ समाचार-पत्र भी ले आया। उसमें विजेता कछुए का गले में माला डाले फुल-साइज फोटो छपा था। फोटो देखने सभी कछुए पानी से बाहर निकल आये

थे। कछुओं के मुखिया ने विजेता कछुए के भाई को फटकारा, "तू पानी के अंदर जा। तुझसे वकील साहब ने क्या कहा था। कुछ दिन अपनी सूरत किसी को न दिखाना।" अपराध-बोध से ग्रस्त जुड़वां भाई लपककर फिर पानी में घुस गया।

समस्त कछुआ-समुदाय मानव-मस्तिष्क और स्वभाव की विलक्षण पेचीदगियों का मन-ही-मन कृतज्ञ हो गया था।

न्यूनतम कार्यक्रम



एक खिचड़ी-सरकार के केबिनेट मंत्री एकांत खोजकर अपने प्रधानमंत्री से उलझ गये, "यह आपको क्या हो गया है? दो पत्रकारों के बहकाये में आ गये! इंक्वायरी बैठा दी। न दायां देखा, न बायां। न ऊपर देखा, न नीचे। ऐसे चलता है क्या प्रजातंत्र?"

"इंक्वायरी कैसे नहीं बैठाता। रिपोर्ट है कि आपने भारी घोटाला किया है। प्रारंभिक जांच हो चुकी है। साफ-साफ दो सौ करोड़ डकार गये हैं। इंक्वायरी भी होगी और कानूनी कार्यवाही भी होगी। लॉ विल टेक इट्स ऑन कोर्स (कानून अपना कार्य करेगा)।" प्रधानमंत्री ने भृकुटि चढ़ा ली।

"अगर यह घोटाला आपके घटक के किसी मंत्री का होता?" मंत्रीजी ने मुंह बनाया।

"तो मैं उसे भी नहीं बख्शता।" प्रधानमंत्री ने टका-सा उत्तर थमा दिया।

"फिर आपको राजनीति नहीं आती। माफ कीजिये, लगता है आपने बाल धूप में ही सफेद किये हैं। आप सह-अस्तित्व के सिद्धांत को ही नहीं समझ रहे हैं।"

"क्या सह-अस्तित्व का सिद्धांत यह है कि मैं भ्रष्टाचार में आपका सहयोग करूं? आपके घोटालों पर पर्दा डाल दूं? देश और जनता को लुट जाने दूं?" प्रधानमंत्री के स्वर मैं कड़वाहट थी।

"देखिये, आप और हम एक ही नाव पर सवार हैं।"

"लेकिन आप उस नाव में छेद कर रहे हैं।"

"और आप उस छेद को चौड़ा कर रहे हैं। नाव को ही डुबो देना चाहते हैं। आप हमारे नेता हैं। आपका फर्ज बनता है कि आप नाव को डूबने न दें। छेद को ढांप दें। नेता का यही काम है। आपसे पहले प्रधानमंत्री भी यही करते रहे हैं, तभी तो उनके मंत्रिमंडल की नावें तैरती रहीं।" मंत्रीजी विनम्रता से समझाने के लिए सचेष्ट थे। अपराध-बोध विनम्रता जैसे गुण का स्वाभाविक जन्मदाता होता है।

"मैं भ्रष्टाचार का छेद ढांपने की बजाय, भ्रष्टाचारी को नाव से बाहर फेंकना पसंद करूंगा।" प्रधानमंत्री जी थे कि समझना ही नहीं चाह रहे थे।

निराश हो मंत्रीजी तैश खा गये। सीधी अंगुली से काम न चलता दिखा तो अंगुली थोड़ी-सी टेढ़ी की, "चाहे नाव ही क्यों न डूब जाये? लगता है हमें आपको पहचानने में भारी भूल हुई है। आप तो न सह-दायित्व के अर्थ समझते हैं, न सह-अस्तित्व को स्वीकारते हैं। जब आप प्रजातंत्र के सिद्धांत को ही नहीं समझे हैं तो साझे की सरकार क्या खाक चला पायेंगे।"

"मैं क्या समझा हूं और क्या नहीं समझा हूं वह सब आपको समझा दूंगा। आज ही रात को सभी घटकों की आपात मीटिंग बुलवा रहा हूं। आप भी आ जाइयेगा। सभी बातें साफ-साफ हो जायेंगी।" प्रधानमंत्री जी ने भी आड़े हाथों लिया। इस महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन गरिमा को भला अपने कनिष्ठ की यह ललकार कैसे सहन होती।

"ठीक हैं, मैं रात की मीटिंग में आ रहा हूं।' कहकर मंत्रीजी पैर पटकते हुए निकल गये।

इस एकांत मुठभेड़ के फलस्वरूप राजनैतिक गतिविधियों में तेजी आ गयी। दस घटकों की यह साझा सरकार एक ही न्यूनतम कार्यक्रम पर गठित हुई थी—'कैसे भी बन पड़े सत्ता हथिया लो' लेकिन नेताओं

से जुड़े बुद्धिजीवियों को इस सीधे-सच्चे सूत्र में सच्चाई की वह नग्नता दिखायी दी जो प्रजातंत्र में जनता के लिए सर्वथा निषेध है। अतः उन्होंने इस नग्नता को आकर्षक संवैधानिक परिधान पहना दिये और साझा सरकार के एक सूत्र को तीन सूत्रीय न्यूनतम कार्यक्रम में सजा-संवार दिया था। ये तीन घोषित सूत्र थे—विकास करेंगे, भ्रष्टाचार को रोकेंगे और स्वच्छ प्रशासन देंगे। अब इन तीन सूत्रीय न्यूनतम कार्यक्रमों पर टिकी सरकार के एक मंत्री स्वयं भ्रष्टाचार के घेरे में आ रहे थे तो राजनैतिक गतिविधियों में तो तेजी आनी ही थी।

आपात मीटिंग महत्त्वपूर्ण थी। अत्यंत महत्त्वपूर्ण। इतनी महत्त्वपूर्ण कि उसका एजेंडा भी नहीं बनाया गया। चर्चा में न आ जाये इसलिए देशवासियों से और पत्रकारों से सारी-की-सारी बात छिपा ली गयी। लेकिन उपस्थिति शत-प्रतिशत हुई। फिर मीटिंग के द्वार बंद कर दिये गये। सील बंद। ऐसे बंद कि एक शब्द भी लीक न हो सके। आखिर को राजनीति में गोपनीयता का सर्वोपरि महत्त्व है।

मीटिंग में पहला आक्रमण स्वयं प्रधानमंत्री जी ने किया, "साथियो, हमारी साझा सरकार जिन तीन न्यूनतम सूत्रों पर खड़ी है, उनमें एक सूत्र है—भ्रष्टाचार को रोकना, लेकिन मुझे बहुत अफसोस और खेद के साथ बताना पड़ रहा है कि प्रारंभिक इंक्वायरी की रिपोर्ट के अनुसारा हमारा ही एक साथी भ्रष्टाचार में लिप्त पाया गया है। उस पर दो सौ करोड़ का घोटाला करने का आरोप है। अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूं?"

मीटिंग में कुछ क्षण मौन छा गया, मानो तय किया जा रहा हो कि इस म्याऊं के गले में पहले घंटी कौन बांधे। प्रधानमंत्री जी की आशा के अनुरूप किसी ने भी उनका समर्थन नहीं किया। अंततः आरोपित भ्रष्टाचारी के घटक के एक तेज-तर्रार सदस्य ने मौन तोड़ा, "वही कीजिये जो आपका कर्तव्य है—भ्रष्टाचार को रोकिये।"

प्रधानमंत्रीजी को जैसे सांत्वना मिली।

"वही तो मैं कर रहा हूं। इंक्वायरी हो चुकी है। अब अदालती कार्यवाही होगी। साथी मंत्री को त्याग-पत्र देना होगा।" समर्थन पा प्रधानमंत्री के स्वर में दृढ़ता आ गयी थी।

उक्त सदस्य ने पतरा बदला, ''इससे भ्रष्टाचार रुक जायेगा? इससे तो भ्रष्टाचार उछलेगा। फैलेगा। बढ़ेगा। अदालती कार्यवाही होगी। एक कैबिनेट मंत्री त्याग-पत्र देगा। सारे अखबार रंग जायेंगे। हैडलाइन्स और सुर्खियों में भ्रष्टाचार फैल जायेगा। टी.वी. तक पर भ्रष्टाचार की घोषणा होगी। ऐसे रुकेगा भ्रष्टाचार? ऐसे रुकता है भ्रष्टाचार?''

''फिर कैसे रुकता है भ्रष्टाचार?'' प्रधानमंत्री जी लगभग भौंचक्के हो गये थे।

इस बार एक दूसरे घटक के महत्त्वपूर्ण सदस्य ने उत्तर दिया, ''प्रारंभिक इंक्वायरी की रिपोर्ट आग को दिखा दीजिये। फिर न किसी अखबार में भ्रष्टाचार छपेगा और न टी.वी. पर उसका राग अलापा जायेगा। बस रुक गया भ्रष्टाचार। रुकना भी क्या, जल ही गया भ्रष्टाचार। इसमें कौन-सी दुविधा है।''

एक अन्य घटक ने भी सुर में सुर मिलाया, ''अरे साहब, राजनीति में तो इसी तरह से भ्रष्टाचार रोका जाता है। सभी पुरानी सरकारें इसी तरह से भ्रष्टाचार रोकती चली आयी हैं, वरना राजनीति में बिना नोटों के कोई काम चलता है क्या!''

''सब कुछ योग्य नेता पर निर्भर करता है। महान नेता के गुण ही यह हैं कि वह भ्रष्टाचार की खबर को पैदा ही न होने दे। जब खबर ही पैदा नहीं होगी तो भ्रष्टाचार कैसे पैदा हो जायेगा भला?''

''ऐसे ही नेता के पीछे होते हैं कार्यकर्ता। जिस नेता की छत्रछाया में कार्यकर्ता फलें-फूलें नहीं, वह नेता महान कैसे हुआ!'' यह एक और सहयोगी घटक का स्वर था।

साझा सरकार के प्रधानमंत्री जी इस चौतरफा आक्रमण से अवाक् रह गये थे। सभा में मौन छा गया। प्रधानमंत्री घटक के सदस्य भी चुप्पी साध गये थे। कोई उनका पक्ष लेने के लिए आगे नहीं आ रहा था। प्रधानमंत्री जी थे कि अपने ही साथियों के बीच अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर पा रहे थे। उनकी स्थिति त्रिशंकु जैसी हो रही थी।

ऐसी विकट परिस्थिति से उनके घटक के ही एक परम सहयोगी ने उन्हें उबारा, 'भ्रष्टाचार रोकने पर तो काफी वार्ता हो ली। अब यह



चर्चा कीजिये कि विकास की दिशा में हमारी सरकार क्या-क्या कदम उठा रही है।''

''विकास के मामले में तो हम बहुत ही पिछड़े हैं। यहां जितने सदस्य बैठे हैं, उनमें चार-छह को छोड़कर किसी का भी विकास नहीं हो सका है। सभी इंतजार कर रहे हैं।'' एक सदस्य ने सीधा-सीधा आरोप लगाया।

''देखिये, इस विषय में मुझे भी घोर आपत्ति है। मैं अनुभव कर रहा हूं कि सारे विकास कार्यक्रम प्रधानमंत्री जी दो ही घटकों को सौंपे चले जा रहे हैं। बस उनके सदस्यों का ही विकास हो रहा है। हमारे घटक को अभी तक एक भी विकास योजना नहीं दी गयी है। फिर विकास कैसे होगा?'' एक विरोधी स्वर उभरा।

चारों तरफ से स्वर उभरे, ''गलत है! बहुत गलत है! विकास का बंटवारा करो।''

प्रधानमंत्री जी के निकट सहयोगी ने हस्तक्षेप करके समस्या का निवारण किया। प्रस्ताव रखा गया कि आगे से घटक दलों की संख्या के अनुपात में विकास परियोजनाओं का बंटवारा होगा ताकि सभी घटकों को विकास करा समुचित अवसर प्राप्त हो सके। हां, कोई घटक दूसरे घटक के विकास-कार्यों में टांग नहीं अड़ायेगा। सह-अस्तित्व के सिद्धांत का पूर्ण रूप से पालन करेगा और आंख-कान और मुंह बंद रखेगा। प्रस्ताव बिना हील-हुज्जत के सर्व-सम्मति से पारित हुआ।

इस महत्त्वपूर्ण मीटिंग में प्रधानमंत्री जी का मुंह अरसे से बंद था। कार्यवाही में वह दर्शक बनकर रह गये थे। जो कुछ हो रहा था, दिख रहा था, सुनायी पड़ रहा था, वह उनकी अवधारणा के अनुरूप नहीं था, किन्तु फिर भी वह मौन थे क्योंकि यही वे सदस्यगण थे जिन्होंने उन्हें अति महत्त्वपूर्ण बनाया था, जनता ने जनादेश देकर नहीं। अंततः मानसिक झेंप से उबरने के लिए उन्होंने मौन तोड़ा, ''और स्वच्छ प्रशासन पर आपको क्या कहना है?''

''इसकी तो सारी जिम्मेदारी आपकी और आपके मंत्रि-मंडलीय सहयोगियों की है। आपको प्रशासन को स्वच्छ रखना चाहिए। कहीं कोई गंदगी नहीं रह जानी चाहिए।'' एक महत्त्वपूर्ण घटक दल के

सदस्य ने समाधान किया।

दूसरे घटक दल के सदस्य ने स्पष्ट किया, "जैसे घर को धोया-पोंछा और बुहारा जाता है, वैसे ही आप भी प्रशासन को धो-पोंछ और बुहारकर स्वच्छ रखिये। अधिकारियों को निर्देश दीजिये कि प्रशासन की हर फाइल को स्वच्छ रखें। कहीं कोई भ्रष्ट या आपत्तिजनक बात न हो। यदि गलती से रह गयी हो तो उसे निकालकर गोपनीय फाइल में डाल दिया जाये। प्रशासन की हर फाइल इतनी स्वच्छ होनी चाहिए कि यदि सी.बी.आई. या न्यायालय उसे छान-छान कर भी देखें तो स्वच्छता ही छनकर आये। इसी को कहते हैं स्वच्छ प्रशासन।"

प्रधानमंत्री जी ने अंतिम वार्ता-सूत्र फिर अपने हाथों में लिया, "देखिये, इस सब में मुझे आपके सहयोग की आवश्यकता रहेगी।"

"हम सब हर हाल में आपके साथ हैं।" भरी सभा ने एक स्वर में उत्तर दिया।

यह कार्यवाही अत्यंत गोपनीय थी, फिर भी एक पत्रकार को इसकी भनक पड़ गयी। रोटी-रोजी के लिए वह रोज ही राजनैतिक गलियारे में चक्कर लगाता था। अचानक एक ही रात्रि को सारे सत्ताधारियों को गायब पा उसके माथे पर बल पड़ गये। पहिया घूमने लगा। बड़ी मेहनत से सुध आयी कि प्रधानमंत्री निवास पर जमावड़ा है। लेकिन इससे अधिक वह बेचारा भी नहीं सूंघ पाया। अंदर की बात बाहर लीक नहीं हुई। अतः अगले दिन सभी समाचार-पत्रों में की सुर्खियों में छपा—प्रधानमंत्री निवास पर सभी घटक दलों की महत्त्वपूर्ण मीटिंग हुई जिसमें देश की वर्तमान परिस्थितियों पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ और निर्धारित न्यूनतम कार्यक्रम—प्रगति, भ्रष्टाचार-निवारण और स्वच्छ प्रशासन की दिशा में ठोस कदम उठाने के निर्णय लिये गये।

देश की जनता समाचार पढ़कर गद्गद हो उठी।

मेंढकी का जुकाम



बात सारे शहर में जंगल की आग की तरह फैल गयी : झंडपीर वाली सुंदरी मेंढकी को जुकाम हो गया है। यह मेंढकी कोई मामूली मेंढकी नहीं थी। झंडपीर वाले तालाब के चौधरी की इकलौती सुकोमल कन्या थी, जिसने पिछले महीने ही सौंदर्य-प्रतियोगिता जीती थी। क्या चाल थी! सैकड़ों नहीं, हजारों जवान मेंढकों के दिलों को चीरकर निकल जाती थी। क्या थिरकन थी, युवा मेंढक समुदाय सारी-सारी रात करवटें बदलता रहता था और क्या उछल-कूद थी कि उसकी एक-एक उछाल पर मेंढकों के दिल बल्लियों उछल जाते थे। शाम ढले जब सुंदरी मेंढकी तालाब के किनारे टहलने के लिए निकलती तो शहर के सारे शोहदे मेंढकों की भीड़ लग जाती थी। वह तो झंडपीर के चौधरी का रौब था कि कोई मेंढक उसे छेड़ता नहीं था, ताना नहीं कसता था, लेकिन इस उम्मीद पर सभी लटके रहते थे कि कब वह अद्वितीय सुंदरी आत्मविभोर हो अपनी सुरीली टर्र-टर्र की तान छेड़े और कब वे बेसुध होकर नाचने लगें। सूचना थी कि ऐसी ही सुरीली, सजीली, रौबीली मेंढकी को जुकाम हो गया है।

शहर के मेंढक-समाज में अभी किसी ने एम.बी.बी.एस. नहीं

किया था, इसलिए काकी मेंढकी उसे काढ़ा घोट-घोटकर पिला रही थीं। पर ये पुराने लटके आधुनिक कमसीना पर भला कैसे कामयाब होते। जुकाम था कि बेकाबू होता जा रहा था। सुकोमल सौंदर्य पस्त हो चला था, कुम्हलाने लगा था। सुंदरी मेंढकी ने तालाब के किनारे टहलना बंद कर दिया। घर में मुंह ढांपे पड़ी रहने लगी। जवान शोहदे एक झलक के लिए तरस गये थे।

झंडपीर के चौधरी भी अपनी कन्या की इस बीमारी से उदास हो चले थे। अब वह अकेले ही तालाब के किनारे टहलने निकलते थे—चिंतित और खोये-खोये-से। गोला कुआं के युवा मेंढक से उनका यह दुख देखा न गया। उसने जल्द से जल्द सुंदरी मेंढकी को जुकाम से छुटकारा दिलाने की कसम उठा ली। लग गया योजना बनाने।

इस जमाने में बीमारी का इलाज तो दवा से ही होता है। दुआ के जमाने तो कब के लद गये। लेकिन मेंढक जगत में तो कोई डॉक्टर उपलब्ध न था, जिसकी सेवायें सुंदरी मेंढकी के लिए ली जा सकतीं। फिर क्या होगा? क्या यह सुंदर सुकोमल फूल भरी जवानी में कुम्हला जायेगा? गोला कुआं के मेंढक ने अपनी सारी दिमागी सामर्थ्य को मथ डाला। याद आया कि स्कूल के छात्र-छात्राएं अपनी प्रयोगशाला में चीर-फाड़ के लिए मेंढक पकड़कर ले जाते हैं। मेंढक ही क्यों—मछली, चूहे, बिल्ली, कुत्ते या अन्य जीव-जंतु क्यों नहीं? शायद इसलिए कि मेंढक का शरीर-विज्ञान मनुष्य की शरीर-रचना से बहुत मिलता-जुलता है। फिर नर-बलि क्यों दी जाये! मेंढक-बलि क्यों नहीं? कितना अन्याय है इस सबल मानव जाति का। और कोई समय होता तो गोला कुआं का नवयुवक मेंढक आक्रोश में आ तूफान उठा लेता लेकिन इस समय उसकी समूची विचारधारा सुंदरी मेंढकी पर केंद्रित थी। उसकी सूई हिलती-डुलती भी तो बस सुंदरी के जुकाम के उपचार भर के लिए। मनुष्य जाति के अन्याय आज उसकी ध्यान-परिधि में स्थान नहीं पा सकते थे। वह सोच रहा था कि यदि मेंढक के प्रयोग मनुष्य पर खरे उतर सकते हैं तो क्या मनुष्य की दवाइयां मेंढकी पर कामयाब नहीं हो सकतीं? बात मेंढक की समझ में अटक गयी। सुंदरी मेंढकी के जुकाम का सही इलाज शहर के प्रसिद्ध एम.डी., डॉ. इलाजनाथ के पास

ही मिलेगा।

सुबह ही सुबह गोला कुआं का युवक मेंढक छलांगें भरता हुआ डॉ. इलाजनाथ, एम.डी. के दवाखाने के दरवाजे पर आ धमका। आंखें बचाकर बंद दरवाजे के नीचे की दरार से अंदर सरक गया। बंद दवाखाने में न अभी डॉक्टर था और न कंपाउंडर, इसलिए निश्चिंत होकर छिपने के लिए उपयुक्त स्थान का चुनाव किया जा सकता था। उद्देश्य था जुकाम के मरीज की दवाई का पर्चा उड़ाना। डॉक्टर की मेज के पास रैक के पीछे सही जगह पा उसने स्थान-ग्रहण कर लिया और चारों पैर फैला इंतजार में झपकी लेने लगा।

झपकी जब टूटी तो डॉक्टर इलाजानाथ मरीजों को निबटाने में लगे थे। एक-एक मरीज़ अंदर आता था, वह देखते थे, निरीक्षण-परीक्षण करते थे, उसे हिलाते-डुलाते थे, कभी-कभी ठोकते-पीटते भी थे, हंस-हंसकर बातें करते थे, दवाई लिखते थे, नोट रखवा लेते थे और बाहर का रास्ता दिखा देते थे। मरीजों को तरह-तरह की शिकायत होती थीं। अजीबोगरीब शिकायतें होती थीं लेकिन जुकाम की शिकायत लेकर अभी कोई नहीं आया था। गोला कुआं का युवक धीरता से प्रतीक्षा करने लगा। अचानक युवक मेंढक के कान खड़े हुए। नवागंतुक मोटी तोंद लिये अंदर प्रविष्ट हुआ था और शिकायत कर रहा था, "डॉक्टर साहब, इस जुकाम ने तो मेरी हालत बिगाड़ दी। पीछा ही नहीं छोड़ रहा है।" युवा मेंढक कान लगाकर सुनने लगे।

"कितने दिन हो गये, सेठ जी?" डॉ. इलाजनाथ ने बड़े प्यार से पूछा।

"पूरे तीन दिन से परेशान कर रखा है। एक मिनट को चैन से नहीं रहने दे रहा है।" सेठजी वास्तव में जुकाम से दुबला रहे थे।

डॉक्टर ने सेठजी को टेबिल पर लिटा दिया। यहां-तहां टेथिस्कोप से उनका बदन दबाया, सांस ऊपर-नीचे करायी और घोषणा की, "आपको तो इंजेक्शन लेने होंगे। तब जाकर दो दिनों में जुकाम से छुटकारा पायेंगे।"

गोला कुआं का युवा-मेंढक चकराया। तो क्या मेंढकी सुंदरी को इंजेक्शन लगेंगे? इतने कमनीय सुकोमल शरीर में सूई चुभोयी जायेगी।

हे भगवान, ये जुकाम तो सचमुच गंभीर बीमारी है। अब वह सुंदरी को इंजेक्शन लगवाने का जुगाड़ कैसे करेगा? दवाई की गोलियां तो कैमिस्ट से खरीद लेता। सुंदरी मेंढकी पानी से सटक लेती। लेकिन इंजेक्शन तो डॉक्टर या कम से कम कंपाउंडर ही लगा सकेगा और मेंढक-समाज में न कोई डॉक्टर है और न कंपाउंडर। ये तो आसमान से टपका, तो खजूर में अटक गया।

डॉक्टर इलाजनाथ ने लगे हाथों सेठ जी के दो इंजेक्शन ठोंक दिये और चार बड़े-बड़े नोट झटक लिये थे।

युवा मेंढक अभी इंजेक्शन के झटके से उबर भी नहीं पाया था कि एक महिला मरीज ने प्रवेश किया। मेंढक के कान फिर खड़े हो गये। यह महिला भी जुकाम की ही शिकायत कर रही थी।

मध्यम-वर्गीय वेशभूषा से सुसज्जित इस महिला के लहजे में पूर्व परिचय की आत्मीयता थी, ''भाई साहब, सोच रही थी कि अपने आप ठीक हो जायेगा, पर दो दिन से लगातार बह रहा है। नाक पोंछते-पोंछते परेशा़न हो गयी। सोचा, भाई साहब को ही कष्ट दे दूं।''

''भाभीजी, आप चिंता न करें। मैं ये एंटी-ऐलर्जी की कुछ गोलियां लिख रहा हूं। चार-चार घंटे बाद लें। दो-तीन दिन में साफ हो जायेगा।'' डॉक्टर इलाजनाथ ने न इस महिला को लिटाया, न हिलाया-डुलाया, न ठोंका-पीटा और न ही टेथिस्कोप छुआया। बस एक पर्चे पर गोलियों के नाम लिखकर दे दिये। महिला ने फीस भी नहीं दी। बस 'थैंक्यू, भाई साहब' कहकर बाहर निकल आयी। डूबते को जैसे तिनके का सहारा मिल गया।

भगवान ने बैठे-बिठाये युवा मेंढक की गंभीर समस्या का निदान कर दिया था। भला उसे कैसे पता चलता कि जुकाम का इलाज पुरुषों के लिए अलग और स्त्रियों के लिए अलग होता है। पुरुषों का जुकाम इंजेक्शन से और महिलाओं का गोलियों से ठीक होता है। उसकी सुंदरी मेंढकी तो स्त्री जाति की है। बस चंद गोलियों से काम चल जायेगा। उसका मेंढक मस्तिष्क डॉ. इलाजनाथ के उपचार-भेद को लिंग-भेद ही समझ पाया था। वह मनुष्य मस्तिष्क के सभ्य आविष्कार 'सेठ और परिचित महिला' भेद से नितांत अनभिज्ञ जो था।

कुछ भी सही, सुंदरी मेंढकी के जुकाम का उपचार उसके हाथ लग गया था। बस एंटी-ऐलर्जी की कुछ गोलियां स्टोर से लेनी होंगी और चार-चार घंटे बाद सुंदरी को खिलानी होंगी। दो-तीन दिनों में जुकाम गायब। छिपे हुए स्थान पर ही हाथ-पैर पसारकर युवा मेंढक ने एक चैन की अंगड़ाई ली।

तभी डॉक्टरों का एक दल धड़धड़ाता हुआ दवाखाने में घुसा। डॉ. इलाजनाथ ससम्मान खड़े हो गये।

"नोट ही चीरता रहेगा या अपने यार-दोस्तों की भी कुछ खैर खबर रखेगा।" कहते हुए उस दल में से एक ने डॉक्टर इलाजनाथ के ठीक सामने की कुर्सी पकड़ ली। उसके साथ ही क्लीनिक की पांचों कुर्सियां भर गयीं। दो आगंतुक कुर्सियों के पीछे खड़े ही रह गये थे।

"क्या मुझसे कुछ गलती हो गयी?" व्यवहार-कुशल डॉ. इलाजनाथ बहुत शिष्ट हो चले थे।

"गलती हो न जाये इसीलिए तो याद दिलाने आये हैं। तुम्हें तो याद ही नहीं होगा कि आज मेडिकल एसोसिएशन का चुनाव है। चार बजे से मेडिकल हॉल में वोट पड़ेगी।"

"पिछले साल भी आप वोट डालने नहीं आये थे, बच्चू। वह तो डॉ. गोस्वामी स्ट्रांग कैंडीडेट थे, जीत गये। अगर हार जाते तो देखते तुम्हें।"

"पर इस बार डॉ. शर्मा इतने मजबूत नहीं। गुप्ता गुट टूटा हुआ है। एक-एक वोट का फर्क पड़ेगा। अगर इस बार ठीक टाइम पर नहीं आये तो डॉक्टरी करना भुला देंगे।"

"अरे भाई लोगो, इतना क्यों बिगड़ रहे हो! यह बताओ कि ठंडा पिओगे या गरम? पिछली बार तो मैं मरीजों में घिरा रह गया था। कुछ मरीजों में ऐसा उलझा कि बस दिमाग से स्लिप हो गया।" डॉ. इलाजनाथ शिष्टाचार में कोई कमी न आने दे रहे थे।

"बाई दी वे, आप कैसे मरीजों में उलझ जाते हैं। जुकाम-नज़ले के मरीजों में! डॉ. इलाजनाथ एम.डी. उस बीमारी का इलाज करते हैं जिसके इलाज की मेडिकल साइंस में जरूरत ही नहीं है।" एक डॉक्टर ने उलाहना दिया।

"भाई, जुकाम भी कोई बीमारी है। चार-पांच रोज में अपने आप चली जाती है। किसी दवा-दारू की जरूरत होती है क्या?" दूसरे डॉक्टर ने स्पष्टोक्ति की।

"पर मरीज को हम यह कैसे समझाएं। जब वह बदहवास-बेहाल होकर आता है तो उसे कुछ उपचार तो देना ही पड़ता है न! वरना समझेगा इस डॉक्टर को कुछ नहीं आता।..." डॉ. इलाजनाथ ने सुर मिलाया।

"और इसकी डिग्री नकली है।" कुर्सी से सटे डॉक्टर ने जुमला पूरा किया। उपस्थित डॉक्टर समुदाय में एक ठहाका लगा।

गोला कुआं के मेंढक के ज्ञान चक्षु-खुल रहे थे। डॉक्टरों की ऐसी बेबाक भंडाफोड़ गोष्ठी का चश्मदीद सौभाग्य उसे प्राप्त हो रहा था।

"मैं तो जुकाम के मरीज़ को उसकी हैसियत देखकर दवा देता हूं। आज ही एक मोटे सेठ में दो ग्लूकोज के इंजेक्शन घुसा दिये। तीन दिन हो चुके थे। दो दिन के लिए और कह दिया।" डॉ. इलाजनाथ अपने डॉक्टर भाइयों से भला क्या छिपाते।

कंपाउंडर बिना कहे ही आठ चाय अंदर ले आया था। चाय की चुस्की के साथ डॉक्टर हंसी-मजाक कर रहे थे। साथियों की और मेडिकल साइंस की बखिया उधेड़ रहे थे। उस सबसे युवक मेंढक को कोई सरोकार न था। उसका प्रयोजन पूर्ण हो गया था। मनोरथ सिद्ध हो गया था। जुकाम का रहस्य हाथ लग गया था। गोला कुआं के मेंढक ने हिसाब लगाया। सुंदरी मेंढकी के जुकाम का आज चौथा दिन था। इसका अर्थ है कि आज या ज्यादा से ज्यादा कल जुकाम खत्म हो जायेगा। जरा भी देरी की तो बूढ़ी काकी का काढ़ा मुफ्त में ही श्रेय मारकर ले जायेगा। अब थोड़ा-सा विलंब भी आत्मघाती होगा। सोचकर युवा मेंढक तेजी से सरकता हुआ डॉ. इलाजनाथ के दवाखाने से बाहर निकल आया।

यह रहस्य तो खुल गया था कि जुकाम के इलाज का संबंध दवाई से नहीं है, पर डॉक्टर के महत्त्व की रक्षा के लिए दवाई तो देनी ही पड़ती है। प्रसिद्ध एम.डी. इलाजनाथ भी देते हैं। अगर दवाई न दी गयी तो इलाज ही क्या हुआ। अगर उसने भी सुंदरी मेंढकी को दवाई

न दी तो कौन मानेगा कि उसने इलाज किया है।

लेकिन सुंदर सुकोमल काया के लिए कड़वी, बदजायका टेबलेट्स गोला कुआं के युवक की कल्पना को नहीं भा रही थीं। वह तो सुंदरी को खट्टी-मीठी जायकेदार गोलियां चुसवाना चाहता था। इसलिए मेडिकल स्टोर की बजाय वह 'स्वीट-कार्नर' की ओर मुड़ गया। नये टेस्ट की सबसे महंगी गोलियों का पैकेट खरीदा और झंडपीर की ओर कुलांचें भरने लगा।

उदास चौधरी के सामने गोला कुआं के युवा ने दावा ठोंका, "मैं जुकाम की दवा लाया हूं। इससे सुंदरी का जुकाम एक-दो दिन में छू-मंतर हो जायेगा।"

झंडपीर के चौधरी को विश्वास तो न हुआ लेकिन मरता क्या न करता। युवक को वह अपनी सुंदरी बेटी के पास ले गया।

गोला कुआं के युवक ने सगर्व पैकेट से कुछ गोलियां निकालीं और पूर्ण विश्वास से बोला, "चार-चार घंटे बाद लीजिये। आज नहीं तो कल तक आपका जुकाम साफ हो जायेगा।"

सुकोमल कन्या ने मिसरी घोली, "कैसे खानी है?"

गोला कुआं का युवा दिल लट्टू की तरह चक्कर काटने लगा, "बस एक मुंह में रख लीजियेगा और आहिस्ता-आहिस्ता चूसियेगा। फिर चार घंटे बाद...!"

सुंदरी ने एक गोली मुंह में रख ली। बोली, "बहुत मीठी है।...क्या हम दो नहीं खा सकते?" मेंढकी इठलाई।

इससे पहले कि लट्टू-युवक हां कर दे, चौधरी गरजे, "यह दवाई है। जितनी बतायी है, उतनी ही खानी है।"

सुंदरी चुप हो गयी। युवक ने मन मसोस लिया।

अब आगे गोला कुआं के युवा का वहां कोई प्रयोजन न था। दवाई को तो आज या कल में असर करना था। उससे पहले तो वह कोई श्रेय नहीं लूट सकता था। सो चौधरी की ओर देखते हुए युवक बाहर आ गया।

शाम तक सारे मेंढक-समाज में सूचना फैल गयी : गोला कुआं युवक की दो गोलियों से ही सुंदरी मेंढकी का जुकाम ठीक हो गया।

कुछ ही घंटों में सैकड़ों मेंढकों ने पूछा डाला, ''ये दवाई कहां से मिली?''

पहले तो युवक संकोच से बताने में आनाकानी करता रहा, फिर जब बहुत जोर पड़ा तो उसे बताना ही पड़ा, ''इंपोर्ट की थी।''

शाम को चौधरी ने युवक को ससम्मान रात्रि-भोज पर आमंत्रित किया। सारे समय युवा-सुंदरी चोरी-चोरी से नज़रें छिपाकर अपने प्राणदाता को देखती रही। एक मौके पर एकांत पाकर सुंदरी ने पूछा, ''क्या मैं दवाई कंटीन्यू करूं?''

युवा का मन छलांगें भरने लगा। बोला, ''क्यों नहीं। अब चाहे तो दो-दो घंटे बाद भी ले सकती हो। सारी खत्म करनी है—चाहे जैसे करो। यह लो बाकी पैकेट भी। पूरा एक कोर्स है। जब मन चाहे ले लेना।'' कहकर युवा मेंढक ने बाकी पैकेट ही सुंदरी को थमा दिया।

मेंढकी ने होंठ काटकर नजरें झुका लीं।

चौधरी को अपनी जवान कन्या की शादी भी करनी थी। उसे मेंढक समाज में भला ऐसा होनहार दूल्हा और कहां मिल सकता था जो जरूरत पड़ने पर जुकाम की दवाई इंपोर्ट भी कर सके। उन्होंने अपनी सुंदरी कन्या का हाथ इस होनहार के हाथों में सौंप दिया और स्वयं बूढ़ी काकी सहित तीर्थ-यात्रा को निकल गये।

तीर्थ-यात्रा



भारतीय राजनीति के इतिहास में एक जमाना था जब सरकारी मंत्री बनने के लिए व्यक्ति को जेल जाने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना पड़ता था। स्वतंत्रता संग्राम में जेल के प्रमाण-पत्र लोगों ने खोज-खोजकर बनवा रखे थे। कहते हैं कि यह स्वतंत्र भारत की राजनीति का सर्वोत्तम दौर था। खुशहाल! स्वच्छ! पारदर्शी! बाद में जेल गये हुए महानुभाव मिलने बंद हो गये और धीरे-धीरे राजनीति भ्रष्ट से भ्रष्टतर होती चली गयी।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने जेल की ऐसी प्रथा डाली कि जवाहरलाल नेहरू, गुलजारीलाल नंदा, गोविंदवल्लभ पंत, के.डी. मालवीय, मौलाना आज़ाद, रफी अहमद किदवई, मुरारजी देसाई, लालबहादुर शास्त्री से लेकर इंदिरा गांधी तक, इससे कोई नहीं बच सका। भारतीय राजनीति के सभी वयोवृद्ध महापुरुष इस राजनैतिक तीर्थ के दर्शन कर आये थे। लेकिन जैसे-जैसे स्वतंत्र भारत की आयु में बढ़ोतरी हुई, इस राजनैतिक तीर्थ-लाभ प्राप्त महापुरुष लुप्तप्राय हो चले। फलतः इस तीर्थ पर जो संयम, सदाचार, समभाव, अनुशासन, आज्ञापालन, सादगी, मितव्ययता आदि गुणों का पुण्य लाभ मिलता था,

वह राजनीतिज्ञों से विलुप्त होता चला गया और वे निरंतर अंवगुणों और भ्रष्टाचार की दलदल में धंसने लगे।

इस घनघोर राजनैतिक संकट को कुछ प्रबुद्ध राजनीतिज्ञों ने समझा, जेल की तीर्थयात्रा की महान आवश्यकता को पहचाना और इस ओर प्रयासरत हो गये। अब वर्तमान भारत में जेल जाना कोई आसान काम तो था नहीं। अब न तो यहां ब्रिटिश सरकार थी जो बात-बात पर जेल में ठूंस देती थी और न कोई स्वतंत्रता आंदोलन, जिसमें इस तीर्थ के दर्शन अवश्यंभावी होते थे। स्वराज्य था और अपनी सरकार थी जिसका आप चाहे जो बिगाड़ लो पर आपको जेल नहीं जाने देती। डरायेगी। धमकायेगी। कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगवायेगी लेकिन जेल की हवा नहीं खिलायेगी। कहते हैं कि देश की आबादी चाहे जितनी बढ़ गयी हो लेकिन बैरकों की संख्या सरकार ने नहीं बढ़ने दी है। भूला-भटका कभी कोई सौभाग्यशाली गलती से इस तीर्थ पर पहुंच भी जाता है तो उसे आनन-फानन में बाहर कर दिया जाता है। स्वतंत्र सरकार ने इस काम के लिए अदालतें बनायी हैं जो जमानत देने के लिए रोज बैठती हैं। भूले से भी नागा नहीं करतीं। छुट्टी के दिन भी अपना यह कर्तव्य-पालन नहीं छोड़ती।

भारतीय राजनीति में यह जेल-यात्रा आज इतनी महत्त्वपूर्ण हो गयी है कि भूले-भटके जो राजनेता किसी मजबूरी में पद-प्राप्ति से पूर्व यह तीर्थ-लाभ नहीं प्राप्त कर सके थे वे भी पद-प्राप्ति के बाद भूल-सुधार कर इस तीर्थयात्रा को लालायित हैं और उसके लिए जमीन-आसमान एक किये दे रहे हैं।

येन-केन-प्रकारेण हर राजनेता को इस राजनैतिक तीर्थ का पुण्य लाभ प्राप्त करने की अभिलाषा है। पर हर छुटभैये नेता के भाग्य में भला यह पुण्य लाभ कहां!

ऐसी विकट परिस्थितियों में राजनैतिक तीर्थ का लाभ प्राप्त करना सचमुच एक टेढ़ी खीर था। लेकिन एक अड़ियल नेता ने कर्म वचन से इस राजनैतिक तीर्थ का पुण्य लाभ प्राप्त करने की ठान ली और लग गया जुगाड़ में।

सीधा रास्ता पूछने के लिए अपने एक एडवोकेट मित्र से मिला

और समस्या सुनायी। एडवोकेट मित्र ने ऊपर से नीचे तक निहारा और पूछा, ''कितने समय रहना चाहते हैं?''

''जितना ज्यादा से ज्यादा समय मिल जाये, मुझ तो उतना ही पुण्य लाभ होगा।''

एडवोकेट मित्र मुसकराये। बोले, 'असम्भव। चाहे जो कर लो। पहली बार तो महज कुछ दिन या ज्यादा से ज्यादा कुछ हफ्ते मिल सकते हैं। बाद में ट्रायल के बाद चाहे जो हो जाये।''

नेताजी ने समर्पण कर दिया, ''कोई बात नहीं है। कुछ हफ्तों का जुगाड़ ही करा दीजिये। बाद की बाद में देखेंगे।''

एडवोकेट मित्र गंभीर हो गये। अंतरचेतना में चले गये, जैसे भारतीय दंड संहिता में गोता लगा रहे हों।

बोले, ''पूरी 511 धारायें हैं, चाहे जिसे पकड़ लो।''

''कोई सम्मानजनक अच्छी-सी धारा बता दीजिये ना! मैं कहां तक खोजता रहूंगा।'' नेताजी ने अनुनय-विनय किया।

''देखिये, अब इन धाराओं में सम्मान पैदा करना तो मेरे बस में नहीं है। इसके लिए तो पहले अपने देश को फिर से परतंत्र कराना होगा। तब तो शायद अपनी कौम इसमें से किसी धारा को सम्मान दे दे। वरना तो सारी ही धाराएं अपमानजनक हैं। कोई-सी भी छांट लो।''

नेताजी फिर गिड़गिड़ाये, ''देखिये, मैं आपके पास कुछ उम्मीद लेकर आया हूं। मुझे निराश मत कीजिये। चाहे तो अपनी फीस ले लीजिये पर कोई ठीक-सी धारा बता दीजियेगा जो मुझे सीधा जेल पहुंचा दे।''

''आपके लिए सबसे सरल रहेगा कि आप चुनाव में धांधली कर लें। आपके खिलाफ एक पिटीशन दायर करा दी जायेगी। फिर आपका काम बना रखा है।'' एकवोकेट मित्र ने सीधा-सरल उपाय सुझाया।

''पर चुनाव तो अभी बहुत दूर हैं। मैं इतने दिन तो इंतजार नहीं कर सकता।'' नेताजी कसमसाये।

''तो फिर मेरे चैम्बर से बाहर निकलते ही किसी को गोली मार दीजिये। सारा काम मिनटों में हो जायेगा। पुलिस भी आ जायेगी।

पकड़े भी जाओगे और जेल भी चले जाओगे।'' अब एडवोकेट मित्र शायद झुंझला गये थे।

''पर जिसे गोली लगेगी वह तो मर जायेगा। अपने स्वार्थ के लिए किसी भले आदमी को मारना तो शोभा नहीं देता। कोई और उपाय बताइये।''

''फिर किसी सुंदरी का रेप कर दो। इसमें कोई नहीं मरेगा।'' एडवोकेट साहब की झुंझलाहट बढ़ती ही जा रही थी।

''आप शायद मेरी पत्नी को नहीं जानते। जीना दूभर कर देगी। उसके पास बड़े-से-बड़े साइज का बेलन है। मुझे मरना नहीं है। फिर बच्चे भी क्या कहेंगे। छीः! कोई और तरीका बताइये ना। रेप-वेप मुझसे नहीं होगा।'' नेताजी को एडवोकेट मित्र के सुझाव जंच ही नहीं रहे थे।

''फिर आप अपने पद का दुरुपयोग कर डालिये। आपके लिए तो बस यही रास्ता बचता है।'' एडवोकेट मित्र ने हार-थककर जैसे अंतिम समाधान निकाला।

''हां, पद के दुरुपयोग वाली बात मुझे जंचती है। मेरी बीवी-बच्चे भी बहुत लंबे समय से इसके लिए मेरे पीछे पड़े हैं। लगे हाथ उनके मन की निकल जायेगी। एक पंथ, दो काज। बताइये, इसके लिए मुझे क्या-क्या करना होगा?'' नेताजी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

''अब लीगल एडवाइज़ में यह तो नहीं आता कि पद के दुरुपयोग का भी तरीका बताया जाये। जब आप दुरुपयोग कर लेंगे तो इससे बचने या आपके केस में फंसने का तरीका मैं बता दूंगा।'' एडवोकेट मित्र ने अपने कर्तव्य की सीमा रेखा खींच दी।

''तो अब पद के दुरुपयोग के तरीके जानने के लिए मुझे कहीं और जाना होगा। बड़ा झंझट है। आप ही कुछ बता दीजियेगा ना। आप तो दिन-रात कोर्ट-कचहरी में लगे ही रहते हैं।''

''एक सीधा-सादा तरीका जो आजकल फैशन में है, वह तो कमीशन खाने का है। किसी पार्टी से मोटा कमीशन खा लीजियेगा। पद का सीधा-सादा दुरुपयोग हो गया समझो। धारा-161 की सारी आवश्यकतायें पूरी हो जायेंगी।''

“फिर मुझे जेल-यात्रा मिल जायेगी?” नेताजी ने उत्सुक होकर पूछा।

“इतनी जल्दी नहीं। आपके इस कांड को पहले पुलिस पकड़ेगी। फिर इसे घोटाला कहकर अखबारवाले मोटे-मोटे अक्षरों में छापेंगे। फिर अदालत में केस दायर होगा। तब कहीं जाकर देख पाओगे जेल का मुंह।”

“सभी काम जल्दी निबट जायें इसके लिए ऐसा तरीका कीजिये कि कमीशन लेते ही पुलिस पकड़ ले, वरना तो बड़ी देर हो जायेगी।”

“असंभव। पुलिस कमीशन लेते हुए कैसे पकड़ेगी। आखिर को आप वी.आई.पी. हैं। कमीशन लेने के बाद शिकायतें होंगी। कुछ शिकायतें हजम हो जायेंगी। जब ज्यादा बढ़ेंगी तो पुलिस हरकत में आयेगी। आपके यहां छापा पड़ेगा। कमीशन बोरियों में भरा मिलना चाहिए। तब कार्यवाही आगे बढ़ेगी। ऐसा नहीं कि जब जी चाहा, जैसे जी चाहा जेल पहुंच गये। पूरे पापड़ बेलने पड़ते हैं।”

“मैंने कमीशन भी खा लिया और फिर भी पुलिस न आयी तो?” नेताजी ने शंका जतायी।

“किसी से दुश्मनी मोल ले लेना और कमीशन खाने की पूरी जानकारी उस तक पहुंचा देना। फिर पुलिस के न आने का खतरा नहीं रहेगा।”

नेताजी को यह बात पसंद आयी। कोई नया दुश्मन बनाने की जरूरत भी नहीं थी। पुराने ही बहुत से थे। उनमें से बस एक को छांटना भर था। बोले, “यह तो मैं कर लूंगा। पर आप मुझे बस जेल भिजवाने की गारंटी भर दे दें। दरअसल मैं भी अपना भाग्य आजमाना चाहता हूं। शायद मैं भी कोई ‘डिस्कवरी ऑफ इंडिया’ लिख सकूं।”

एडवोकेट मित्र ने उन्हें एक बार फिर नीचे से ऊपर तक घूरा, “अपने को जवाहरलाल नेहरू समझ रहे हो क्या?”

“अरे, नहीं! कहां स्व. श्री जवाहरलाल नेहरू और कहां हम! सवाल ही पैदा नहीं होता। लेकिन ट्राई तो करना चाहिए ना। महापुरुषों के पद-चिह्नों पर चलना तो चाहिए। मौका मिले तो क्या नहीं हो सकता। अब आप ही बतायें अगर स्व. जवाहलाल नेहरू जी का जेल

प्रवेश न होता तो क्या 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' लिखी जाती। उन्हें अवसर मिला और एक महान कार्य हो गया।'' नेताजी ने अपनी मनःस्थिति खोली।

''जनाब, नेहरूजी तो 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' जेल से बाहर भी लिख लेते। सवाल यह है कि आप जेल में क्या लिख पायेंगे। शायद गलतफहमी में हैं।'' एडवोकेट मित्र झल्लाये।

''देखिये, कोशिश तो हम भी करेंगे। कुछ तो लिखा ही जायेगा। डिस्कवरी ऑफ इंडिया जैसा नहीं तो कुछ और सही। सही मौका और वातावरण तो मिलने दीजियेगा। रही नेहरू जी की जेल से बाहर लिखने की बात सो उन्होंने लिखा तो जेल के बाहर रहकर भी है पर वह डिस्कवरी ऑफ इंडिया तो नहीं बन सका। गंगाधर तिलक का प्रसिद्ध 'गीता रहस्य', राजेंद्र बाबू की 'आत्मकथा'—सभी तो जेल में लिखे गये हैं। कुछ न कुछ योगदान तो इसमें जेल का है ही।''

एडवोकेट मित्र झुंझला गये।

सारी लीगल जानकारी गांठ में बांध नेताजी जेल-यात्रा की योजना को फलीभूत करने में लग गये। सत्ता से जुड़े राजनेता थे। महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन। पद और कुर्सी पहले से ही टांगों के नीचे दबी थी। बस उसका दुरुपयोग मात्र करना था।

सबसे पहला ठेकेदार जो उनके ऑफिस में प्रविष्ट हुआ उससे बोले, ''हम कमीशन खायेंगे।''

ठेकेदार अवाक् रह गया। बोला, ''यह आपको आज क्या हो गया है। आपने तो आज तक कमीशन नहीं खाया।''

''पर अब खाना है।'' नेताजी के स्वर में असीम दृढ़ता थी—ऐसी दृढ़ता जो टस से मस नहीं होना जानती थी।

''जरा सोचिये, अगर किसी विपक्षी को पता चल गया तो। सारी इज्जत धूल में मिल जायेगी। कितनी थू-थू होगी।'' ठेकेदार इस नयी मुसीबत से बच निकलना चाह रहा था। आखिर को कमीशन तो उसे अपनी ही कमायी से देना पड़ता न।

''आप विपक्षी को कह आइये कि मैं कमीशन खा रहा हूं, जो चाहे कर ले। ज्यादा से ज्यादा मुझे जेल ही तो भिजवायेगा। पर मैं

कमीशन जरूर खाऊंगा।" नेताजी ने मेज पर मुक्का मारा।

ठेकेदार सकते में आ गया। उसे लगा नेताजी पगला गये हैं। वह उठकर चला आया। न कमीशन दिया और न ही विरोधियों से शिकायत की। कुछ समय यों ही निकाल दिया।

दोबारा गया तो नेताजी ने फिर वही रट लगायी। ठेकेदार समझ गया कि बिना कमीशन दिये काम नहीं चलेगा। सो चुपचाप दे दिया, पर शिकायत नहीं की। अंततः शिकायत नेताजी को अपने सचिव से ही करानी पड़ी, तब जाकर जेल-यात्रा का मार्ग प्रशस्त हो सका।

नेताजी ने पुलिस के समक्ष सहज भाव से समस्त सत्य स्वीकार कर लिया। जरा भी संकोच नहीं किया। केस सीधा-सादा और स्पष्ट हो गया पर एक ही जुर्म की धाराएं दो लगीं। एक पद के दुरुपयोग की और दूसरी रिश्वत लेने की।

नेताजी ने भरी अदालत में न्यायाधीश से प्रार्थना की, "सरकार, कृपया मेरी दोनों धाराओं की सजाओं को एक के बाद एक क्रम में चालू रखने के आदेश दें और जेल में मुझे कागज-कलम की सुविधा प्रदान की जाये।"

"क्यों?" न्यायाधीश महादेय ने आश्चर्यचकित होकर पूछा।

नेताजी कुछ सकुचाये। फिर साहस बटोरकर उत्तर दिया, "मैं भी जेल में कुछ लिखना-पढ़ना चाहता हूं।" साहस जुटाकर भी वे 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' का नाम न ले सके।"

सजा सुनकर जब नेताजी अदालत से बाहर आये तो श्रद्धालुओं की भीड़ उमड़ पड़ रही थी। एक खास चमचा निकट आया और पूछा, "नेताजी, यह क्या हो गया?"

नेताजी ने डांटा, "अबे, चुप! तीर्थयात्रा को जा रहा हूं। बाहर आते ही सीधा प्रधानमंत्री बनूंगा। तू अपने देश की परंपरा भूल गया क्या?"

रावण का अंत



हर साल दशहरे पर पूरा का पूरा फूंकने के बाद भी रावण फिर कैसे जी उठता है, यह कौतूहल देखने की लालसा हमारे पड़ोसी अनोखेलाल जी को रामलीला के मैदान पर ले गयी। भव्य आयोजन था। चौंसठ फुट का रावण अस्त्र-शस्त्रों और दस मुखड़ों से सुसज्जित बीस बांहें फैलाये शान से खड़ा था। मैदान पर लीला हो रही थी। राम की लीला, जिसमें रावण का विशाल पुतला गौरवमंडित हो सुशोभित था। राम की लीला में आज रावण का मारा जाना निश्चित था। सुखांत फिल्मी कथानक के खलनायक की तरह। लेकिन मजाल कि रावण के माथे पर कोई शिकन हो। उसके जलवे-जलाल में कहीं कोई कमी हो। एक दर्शक ने टिप्पणी की, ''पहले साल इसकी ऊंचाई साठ फुट थी। इस साल चौंसठ फुट हो गयी है।''

''बस चार फुट ही बढ़ा। मेरे हिसाब से तो कम से कम बीस प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए थी।'' यह दूसरे दर्शक थे।

एक और स्वर उभरा, ''दिल्ली में तो रावण इस साल बानवे फुट का बना है।''

''आखिर को दिल्ली हमारी राजधानी जो ठहरी। वहां का रावण

ज्यादा ऊंचा होना ही चाहिए।'' एक जुमला और आया।

''आप यहां रावण को मारने आये हैं या बढ़ाने!'' एक दर्शक तुनके।

''भाई साहब, पहले लंबाई तो पूरी नाप लें, तभी तो मारेंगे। अगर अधूरी लंबाई का ही मार दिया, तो शेष रावण बचा नहीं रह जायेगा।''

''अगर यही हिसाब लगा रहे हो तो रावण को कम से कम एक सौ पच्चीस फुट का बनाओ। इससे कम का तो अब कोई सवाल ही नहीं रह गया है।'' एक और आवाज आयी।

''और मुखड़े अब कम से कम बीस होने चाहिए। दस मुखड़े की तो बीते काल की बात हो गयी है।''

''फिर भुजाएं कितनी होनी चाहिए?'' एक दर्शक ने बड़े भोले स्वभाव से पूछा।

''होनी चाहिए से क्या मतलब। यह पूछो कि आज के रावण की कितनी भुजाएं हैं। गिनोगे तो सौ से ऊपर ही गिनती पहुंचेगी।''

अनोखेलाल जी को इस टीका-टिप्पणी में रस आने लगा था। उन्होंने बात आगे बढ़ाने की गरज से टांग अड़ायी, ''भई, रावण तो मात्र प्रतीक है। इसके लंबे या छोटे होने से भला फरक क्या पड़ता है।''

''कैसे नहीं पड़ता फरक! गोभी का फूल जिसका प्रतीक होगा, क्या गुलाब की कली भी उसका प्रतीक बन जायेगी। अब अपने श्री रामचंद्र जी को ही देख लो, सदियां गुजर गयीं पर जो एक इंच भी बढ़े हों।'' एक दर्शक तुनके।

''अरे भाई, बढ़ने-घटने से क्या होता है। मरता तो हर साल रावण ही है ना। हमारे श्री रामचंद्र जी का तो किसी भी साल बाल बांका नहीं होता।'' एक बुजुर्गवार दर्शक ने जैसे सारे वाद-विवाद का निर्णायक हल निकाल दिया था।

लेकिन एक सज्जन फिर अटक गये, ''यह भी अजीब मरना है पट्ठे रावण का। हर साल मरता है और ऊंचा हो जाता है। यह हाल रहा तो एक दिन आसमान को छुएगा और हमारे श्रीराम जी हैं, जैसे

थे वैसे ही रहेंगे।''

इस टिप्पणी पर एक अधिक धर्म-परायण दर्शक तैश खा गये, ''आप क्या चाहते हैं? रावण की जगह श्रीराम जी मरा करें? आपकी धार्मिक भावनाओं को क्या हो गया है? क्या आप नहीं चाहते कि अच्छाई की बुराई पर विजय हो? सत्य असत्य को जीते?''

''अरे साहब, इसमें किस को एतराज है, इसी के लिए तो आते हैं यहां हर साल। पर यह क्या तरीका है कि आज मारा और कल को रावण फिर और ऊंचा हो गया। इस तरह से तो यह मारने का ढोंग ही हुआ ना? आप ही बताएं, हर साल रावण का पुतला जलता है पर क्या बुराई कम हो रही है? साल दर साल बढ़ती ही चली जा रही है, रावण की ऊंचाई की तरह। फिर इस ढोंग से क्या लाभ?'' यह वही पहले वाले सज्जन थे।

''लाभ क्यों नहीं है भला। पिछले साल रावण के पुतले का ठेका एक लाख पैंतालीस हजार में छूटा था। इस बार सवा दो लाख में छूटा है। इन अस्सी हजार रुपयों में रावण बस चार फुट बढ़ा है। यानी बीस हजार रुपये फुट के हिसाब से।'' एक दर्शक ने उलाहना दिया। यह रामलीला कमेटी के वर्तमान निर्वाचित अध्यक्ष के विरोधी गुट के थे।

अब भला अध्यक्ष महोदय के समर्थक कैसे चुप रहते, ''आपको पता है कि मंहगाई कितनी बढ़ गयी है। आपने तो बस अस्सी हजार को चार फुट पर बांट दिया। अगर साठ फुट ऊंचा रावण भी बनता, तब भी क्या इस साल एक लाख पैंतालीस हजार में बन सकता था?''

एक दूसरा विरोधी भी अटका, ''और वे पचास हजार जो सीधे-सीधे कमीशन के खाये गये हैं, उसका कोई हिसाब है?''

''कमीशन तो पिछले सालों में भी खायी गयी थीं। पिछले साल चालीस हजार लिये थे अध्यक्ष महोदय ने। क्या हमें पता नहीं है!'' वर्तमान अध्यक्ष के एक अन्य हितैषी ने भंडा फोड़ किया।

अनोखेलाल जी ने जैसे फैसला सुना दिया, ''चलिये, हिसाब साफ हो गया। रावण के पुतले में चार फुट की बढ़ोतरी हुई और कमीशन

में दस हजार की। आखिर को हर चीज तरक्की पर ही है।''

''देखिये साहब, महंगाई को मत भूलिये। बाकी सत्तर हजार तो महंगाई ही खा गयी ना।'' एक और दर्शक ने अपना स्वर ऊंचा किया।

''और चार फुट जो ऊंचाई बढ़ी, उस पर कुछ खर्चा नहीं आया होगा?'' एक दर्शक ने फिर हिसाब-किताब कुरेदा।

''अरे भाई साहब, आपको अंदर की बात पता नहीं ह। इस बार पुतले में बम कम रखे गये हैं। जब रावण जलेगा तब पता चलेगा। पहले सत्तर बम रखे गये थे पुतले में, इस बार केवल पचास हैं। चार फुट ऊंचाई का खर्चा तो बम कम करके निकाल लिया गया है।'' यह वही अध्यक्ष महोदय के विरोधी थे।

इस वाक्‌युद्ध की खबर अब तक रामलीला कमेटी के अध्यक्ष को मिल चुकी थी। वह दूसरे छोर पर लीला के आयोजन में संलग्न था। सुनकर, जरूरी कामों को छोड़कर तेजी से टहलता हुआ इसी ओर आ गया। सूचना प्रेषक ने उसका मार्गदर्शन भी किया था। विरोधी स्वर को अध्यक्ष महोदय ने पहली ही नजर में पहचान लिया। यह पूर्व अध्यक्ष के कनिष्ठ भ्राता थे। पूर्वाध्यक्ष इस बार भी पुनः रामलीला कमेटी के अध्यक्ष पद के उम्मीदवार थे। उन्हें अस्सी वोटों की करारी हार देकर ही वर्तमान अध्यक्ष इस पद पर आरूढ़ हुए थे।

अध्यक्ष महोदय ने वार्ताक्रम को वहीं से पकड़ लिया, ''कौन कहता है पुतले में बम कम हैं। जब जलेगा तो बम फटने की गिनती कर लेना। अगर सत्तर से एक भी कम निकला तो मूंछें मुंडवा लूंगा।''

एक दर्शक ने अध्यक्ष महोदय के चेहरे की ओर देखा। वहां मूंछें पहले से ही नदारत थीं।

''क्या आपने पचास हजार कमीशन नहीं खाया?'' पूर्वाध्यक्ष के भ्राताश्री ने अध्यक्ष महोदय को सम्मुख पाकर सीधा-सीधा आरोप लगाया।

''आपके पास कोई सबूत है, दिखाइये?'' अध्यक्ष महोदय तैश खा गये।

''सबूत तो इस बात का भी नहीं है कि पिछले साल चालीस हजार

रुपये खाये गये थे।'' एक दर्शक ने टोका, ''अरे साहब, सबूतों की भली चलायी। अगर किसी न्यायालय में सीता माता के अपहरण का भी सबूत मांगा जाता तो रावण के खिलाफ उसका भी कोई सबूत नहीं मिलता। रावण साफ छूट जाता।''

'तो इसका मतलब है कि आप बिना सबूत के ही बदनाम करेंगे। जो मुंह में आयेगा, कह देंगे।'' अध्यक्ष महोदय उफने।

अब तक इस वाक्‌युद्ध की सूचना पूर्वाध्यक्ष को भी प्राप्त हो गयी थी। वह भी लदर-पदर दौड़े आये। उसके मन में भी भड़ास थी। ऐसा सुयोग वह भी किसी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहते थे।

अपने प्रतिद्वंद्वी के अंतिम शब्द पूर्वाध्यक्ष ने सुन लिये थे। वह गरजे, ''जो मुंह में आयेगा और जो मन में आयेगा, सब कहेंगे। हमें भ्रष्टाचार मिटाना है, बढ़ाना नहीं। यहां हम रावण फूंकने आये हैं, रावण जिलाने नहीं।''

उपस्थित समुदाय लगभग दो खेमों में बंट चुका था। रामलीला ग्राउंड पर एक दूसरी लीला प्रारंभ हो गयी थी। रावण के विराट पुतले और हाथों में धनुष-बाण साधे श्रीराम की छत्रछाया में यह एक आधुनिक लीला थी। किंतु इसमें अभी तक यह निर्धारित नहीं हो सका था कि कौन राम है और कौन रावण। अनोखेलाल जी को दोनों ही रावण लग रहे थे। उन्होंने वर्तमान अध्यक्ष की ओर रुख किया, ''देखिये, सबूत मिलना तो टेढ़ी खीर है। कमीशन का पेमेंट चैक से तो हुआ नहीं होगा। न उसकी रसीद ली-दी गयी होगी। पुतला बनानेवाला ठेकेदार भी नहीं मानेगा कि उसने कमीशन में पचास हजार दिये थे। आपका तो सवाल ही नहीं मानने का। यह कमीशन किसी के सामने भी लिया-दिया नहीं गया होगा। इसलिए कोई चश्मदीद गवाह भी नहीं हो सकता फिर आखिर सबूत पैदा कहां से होगा।''

अध्यक्ष महोदय को अनोखेलाल जी नये आदमी लगे। उन्हें अपनी ओर करने के प्रयत्न में उन्होंने अनोखेलाल जी के कंधों पर हाथ रखा, ''भाई साहब, सबूत उसी बात का तो हो सकता है जो कभी हुई हो। जब कमीशन लिया ही नहीं गया तो फिर उसका सबूत कैसे पैदा हो जायेगा।''

पूर्वाध्यक्ष भड़क गये, ''और मेरे ऊपर जो झूठा आरोप लगाया जा रहा है कि पिछले साल मैंने चालीस हज़ार खाये, इसका कोई सबूत है आपके पास?'' वास्तव में इस बार चुनाव में उनके विरुद्ध चालीस हजार रिश्वत खाने का आरोप लगाकर ही वर्तमान अध्यक्ष उनके विरुद्ध अध्यक्ष पद का चुनाव जीते थे।

''जी, है, पुतला बनानेवाला सहायक कह रहा था कि उसने ठेकेदार को कहते सुना था।'' वर्तमान अध्यक्ष ने दोषारोपण किया।

''यों तो वही सहायक इस बार भी कह रहा है कि पचास हजार दिये गये हैं। उसका ठेकेदार एक दिन झुंझलाकर उससे कह रहा था कि पुतले में माल पर माल लगाये जा रहा है। पता है इस बार दस हजार ज्यादा देने पड़े हैं।'' पूर्वाध्यक्ष भी नहीं चूके।

लोगों को इस आरोप-प्रत्यारोप में आनंद आ रहा था। भीड़ श्री रामचंद्र जी की लीला से सिमटकर इस आधुनिक समर के चारों ओर एकत्र हो चुकी थी। अनोखेलाल जी ने स्थिति को भांपा और कानून-सम्मत व्याख्या प्रस्तुत की, ''अब सुनी-सुनायी बातें तो कानून में सबूत नहीं होतीं। कोई ठोस सबूत दीजिये।''

''यह भी खूब रही। खुद तो अपराध करनेवाला नहीं मानेगा और सुनी-सुनायी कानून नहीं मानेगा। फिर तो हो गया न्याय।'' एक दर्शक ने उलाहना दिया।

तभी पुरोहित ने शंखनाद किया। यह श्रीराम द्वारा रावण पर अग्निबाण छोड़ने का उद्घोष था। राम-रावण युद्ध में अब रावण का अंत होनेवाला था। राम के अग्निबाण की लपटों में बुराई के प्रतीक चौंसठ फुटे रावण का पुतला संपूर्ण जलकर राख हो जायेगा। पुतले से पटाखे और बम छूटेंगे। अच्छाई की बुराई पर, सत्य की असत्य पर विजय की दुंदुभि बजेगी।

दर्शकों में से एक ने बमों के फूटने की आवाज की गिनती कर ही डाली थी। कुल मिलाकर अड़तालीस बार बम फटने की आवाजें आयी थीं। उन्होंने उस अध्यक्ष की ओर निहारा जो ताल ठोंक पर रावण के पुतले में सत्तर बमों का दावा कर रहे थे। अध्यक्ष महोदय तुरंत चहके ''एक साथ कई-कई बम भी तो फट जाते हैं। पूरे सत्तर

बम पुतले में रखे गये थे। मेरे पास रसीद जो है।'' और सबूत में अध्यक्ष महोदय ने रसीद पेश कर दी, जिस पर ठेकेदार ने लिखा था, ''रावण के पुतले में सत्तर बम रखे गये हैं।'' बुराई और असत्य का प्रतीक हर वर्ष की तरह जलकर भस्म हो चुका था। साथ ही सारे बम और पटाखे भी नष्ट हो गये थे। बचा था तो एक सबूत—झूठा सबूत—कागजी सबूत, जो अब सत्य को प्रमाणित करेगा।

सबसे अच्छा प्रत्याशी



नये चुनावों की अधिसूचना कानों में पड़ते ही मेरे पड़ोसी अनोखेलाल चौरसिया बेधड़क मेरे पास आ धमके। पूछा, "क्या खयाल है, मैं चुनाव लड़ लूं?"

मैंने उन्हें निहारा। जानना चाहता था कि वह इस समय किस श्रेणी का मजाक कर रहे थे। मेरी जानकारी के अनुसार मेरे पड़ोसी का राजनीति से कभी कोई लेन-देन नहीं रहा था। राजनैतिक समझ और सूझ-बूझ का स्तर यह था कि उन्हें देश की सभी राजनैतिक पार्टियों के नाम तक भी मालूम नहीं थे। चुनाव की उम्मीदवारी की बात तो दूर, उन्होंने मेरी याद में कभी किसी चुनाव में मतदान तक नहीं किया था। ऐसे निरीह पड़ोसी के मुख से टपके ये शब्द मुझे कोरा मजाक नहीं लगते तो भला क्या लगते। अतः मैंने उन्हें सपाट राय दी, "छोड़ो भी, यह चुनाव-वुनाव का झंझट आप जैसे भले आदमियों के लिए नहीं है।"

सुनकर पड़ोसी उदास हो गये। मुंह लटक गया। शायद मैंने उनके कदम उठाते ही टंगड़ी मार दी थी। मुंह टेढ़ा कर बोले, "भाई साहब, आपसे यह उम्मीद नहीं थी। आपने तो आज मेरा दिल ही तोड़ दिया।"

अब उनको यह कौन समझाता कि मुझे भी उनके ऐसे प्रश्न की कोई उम्मीद नहीं थी। फिर भी मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ। गलती के एहसास का दायित्व इस जमाने में प्रायः समझदार आदमी का ही होता है। मुझे लगा उड़नातुर पतंगे को रोकना-टोकना नहीं चाहिए। फिर चाहे वह सीधा लौ पर भस्म होने ही क्यों न जा रहा हो। उड़ना उसका स्वभाव है और जलना उसकी नियति। फिर इस स्वाभाविक विधि-विधान में हम क्यों अपनी अंगुली अड़ाएं। अतः मैंने भूल-सुधार की, "देख लो! कुछ चांस-वांस भी है? किस पार्टी का टिकट लोगे?"

इस सकारात्मक प्रश्नावली से अनोखेलाल जी का मुखारविंद खिल उठा। बोले, "उस राजनैतिक पार्टी का जिसकी हवा बह रही हो! जिसके टिकट पर जीत निश्चित हो।"

मैंने मन ही मन माथा ठोंक लिया। बदगुमानी और गलतफहमी की भी एक सीमा होनी चाहिए। हर आत्महत्या करनेवाला सीधा हिमालय की चोटी से तो सिर नहीं फोड़ता। जिस राजनैतिक पार्टी की हवा बह रही हो, जिसके उम्मीदवार की जीत प्रायः सुनिश्चित मानी जा रही हो, वह अनोखेलाल जी को भला अपना टिकट क्यों देने लगी। अनोखेलाल जी में ऐसी क्या अनोखी बात है? पड़ोसी-धर्म ने मुझे कोई चुभती प्रतिक्रिया करने के विरुद्ध सचेत किया। मैंने एक ही ढेले से कांच के टुकड़े-टुकड़े कर देनेवाली भावना का सप्रयास दमन किया और सहज होकर पूछा, "क्या वह पार्टी तुम्हें टिकट देगी?"

"क्यों नहीं? आखिर मुझमें कमी क्या है?" आत्मविश्वास तनिक भी डिगा हुआ नहीं था।

भारतीय संविधान की धाराओं के अनुसार उसमें सचमुच कोई कमी नहीं थी। वह भारत के नागरिक थे। उनकी आयु पचीस वर्ष से अधिक थी। दिवालिया या विक्षिप्त नहीं थे। हमारा संविधान इससे ज्यादा कुछ जन-प्रतिनिधियों में चाहता भी नहीं है। लेकिन मेरी तुच्छ समझ से हमारी राजनैतिक पार्टियां अपने टिकट के दावेदारों में इससे ज्यादा कुछ जरूर चाहती रही होंगी और वह सब कुछ मेरे विचार से मेरे पड़ोसी में जड़ से नदारद था। न उनका कोई राजनैतिक इतिहास

था और न वर्तमान। चुनाव क्षेत्र या शहर का तो कहना ही क्या, अपने मोहल्ले में भी उन्हें मेरे अलावा कोई नहीं जानता था। लोक-सेवा की यह स्थिति थी कि किसी के लिए कभी फूटी फली भी नहीं फोड़ी थी। किसी की मौत-गमी में जाने से उन्हें सख्त परहेज था और शादी-ब्याह में कोई उन्हें बुलाता ही नहीं था। फिर भला इतने लोकप्रिय उम्मीदवार को शीर्षस्थ राजनैतिक पार्टी अपना टिकट क्यों नहीं देगी।

उनकी नादानी थी कि बढ़ती ही जा रही थी। अतः मैंने अब उन्हें ठीक लाइन पर लाना ठीक समझा, "आपमें कमी यह है कि आपका कोई राजनैतिक इतिहास नहीं है। कोई राजनैतिक जान-पहचान नहीं है। कोई राजनैतिक संबंध नहीं है। आपको कौन उम्मीदवार बनायेगा?" मैं अभी भी पूर्ण शालीनता का निर्वाह कर रहा था।

"राजनीति इतिहास नहीं, भविष्य देखती है, भाईसाहब। मेरी कोई राजनैतिक जान-पहचान नहीं है। कोई पूर्व राजनैतिक संबंध नहीं है—यही तो मेरी विशेषता है जो मुझे टिकट दिलायेगी। जरा सोचो, कितनी स्वच्छ छवि है मेरी। बिलकुल बेदाग। आप बस तैयार होकर मेरे साथ दिल्ली चलिये। मेरा टिकट तो पक्का है।"

अब मेरी हालत सांप-छछूंदर-सी हो रही थी। अब मेरे पड़ोसी को कौन समझाये कि उसकी छवि ही कहां है जो दागदार या बेदाग होगी। नासमझ को तो समझा लो लेकिन दीवाने या पागल को कौन समझा सका है। पड़ोस-धर्म मुझे कोई कड़क उत्तर देने से रोक रहा था और अनोखेलाल जी थे कि टस से मस नहीं हो रहे थे।

मुझे ऊहापोह में पड़ा देख श्री अनोखेलाल जी ने नया दांव फेंका, "बस एक दिन लगेगा। सुबह को चलेंगे और शाम को टिकट लेकर ही आयेंगे। बस आपका सहारा चाहिए। आखिर को एक पढ़ा-लिखा आदमी भी तो साथ होना चाहिए। मैं तो उम्मीदवारी का पर्चा भी भरना नहीं जानता। हां, खर्चे से आप निश्चिंत रहें। सारा खर्चा मैं उठाऊंगा। बस आप एक दिन दान दे दीजियेगा। कल को आप ही तो सांसद के प्रिय पड़ोसी कहलायेंगे।"

मैं दिवास्वप्न नहीं देखता। पड़ोसी का सांसद बनना असंभव था। मैं गारंटी ले सकता था कि अनोखेलाल चौरसिया सांसद नहीं बन

सकते। सांसद बनना तो दूर, उन्हें कोई प्रमुख राजनैतिक पार्टी टिकट भी नहीं दे सकती और जीतने की प्रबल संभावनाओं वाली पार्टी तो बिलकुल भी नहीं। लेकिन मैं उन्हें अपनी बात नहीं समझा पा रहा था और वह पड़ोसी-धर्म के शिष्टाचार आवरण में मेरे ऊपर हावी होते चले जा रहे थे। आखिर को वही जीते। मैं पड़ोसी-संबंधों पर एक दिन न्यौछावर करने को विवश हो गया। अनोखेलाल जी दो ही दिन बाद का प्रोग्राम निश्चित कर गये।

पूछते-गछते अनोखेलाल जी मुझे दिल्ली में देश की प्रमुख राजनैतिक पार्टी के मुख्यालय पर ले गये। मुख्यालय पर जमा भीड़ का फुलाव देखकर लग रहा था कि सचमुच इस बार इस पार्टी का सितारा बुलंद है। इसी की जीत की लहर चल रही है। वहां न कोई अनोखेलाल को जानता था और न मुझे। इसलिए न किसी ने रोका, न टोका और मेरे पड़ोसी मुझे लगभग खींचते हुए पार्टी अध्यक्ष के कमरे के द्वार तक ले गये। द्वार पर कार्यकर्ता मुस्तैदी से तैनात थे। अवांछनीय तत्त्वों को अंदर झांकने भी नहीं दिया जा रहा था। मन ही मन मेरी बांछे खिल गयीं। सोचा, चलो बला टली। अब अनोखेलालजी को यहीं से उलटे पैरों लौट जाना पड़ेगा और चुनाव का बैताल उनके सिर से स्वयं उतर जायेगा। ज्ञात हुआ कि अध्यक्षजी से मिलने के लिए लोग-बाग तीन-तीन दिन से लाइन लगाये थे और उन्हें अध्यक्षजी के तीन मिनट भी नहीं मिले थे। मैंने प्रश्नवाचक दृष्टि से अपने पड़ोसी को देखा, मानो पूछ रहा हूं, ''बोलो, अब क्या कहते हो?''

पड़ोसी ने बिना कोई झिझक दिखाये कहा, ''भाईसाहब, जल्दी से एक कागज निकालो और उस पर लिखो—अपने क्षेत्र की सीट जीतने का एक शर्तिया और आसान तरीका बताना चाहता हूं। घड़ी में देखकर केवल पांच मिनट लूंगा। धन्यवाद—अनोखेलाल चौरासिया।''

लिख तो मैंने दिया पर मन-ही-मन शंकित हो उठा कि आज मार खाये बगैर इस मुख्यालय से नहीं लौट पायेंगे। पड़ोसी धर्म में मार में भी हिस्सेदारी करनी पड़ेगी। मैंने फुसफुसाकर पूछा, ''कुछ तरीका-वरीका है या मार पड़वाओगे?''

अनोखेलाल जी की मुखमुद्रा पर वही अनोखी मुसकान फैल गयी।

बोले, "भाई साहब, देखते रहो। आज हम टिकट लेकर ही घर लौटेंगे!" मैं जितना आशंकित था, अनोखेलाल जी उतने ही आश्वस्त। लग रहा था कि जैसे राजनीति के सिद्धहस्त मंजे हुए खिलाड़ी हों।

उस छोटी-सी पर्ची ने चमत्कारी प्रभाव दिखाया। सारी लाइनें और क्रम तोड़कर अनोखेलाल जी को पंद्रह मिनट बाद ही अंदर बुला लिया गया। मेरा हाथ खींचकर अनोखेलाल जी मुझे भी अंदर ले गये।

अंदर हॉल कमरे में मसनद से कमर टिकाये अध्यक्ष जी विराजमान थे। साथ में चार विशिष्ट सहायक भी मौजूद थे। अनोखेलाल जी का अध्यक्ष जी ने नख-शिख अवलोकन किया और प्रश्नवाचक भौंहें उठा दीं।

अनोखेलाल जी तनिक भी नहीं लड़खड़ाये। कमरे में प्रवेश करते ही धवल चांदनी पर साष्टांग लेट गये और कसकर अध्यक्षजी के चरण थाम लिये। सिर पर हाथ फिरवाकर ही सीधे हुए। फिर बड़े रहस्यमय ढंग से अपना प्रस्ताव रखा—"देखिये, मेरे निर्वाचन क्षेत्र में 70 प्रतिशत मतदाता अनपढ़ हैं—निरक्षर भट्टाचार्य, जिन्होंने कभी पुस्तक ही नहीं देखी। यह स्वाभाविक है कि अनपढ़ मन ही मन पढ़े-लिखे से भयभीत रहता है। उसे अपना-सा नहीं समझता। हर पढ़ा-लिखा उसे पराया लगता है। अतः मेरे निर्वाचन क्षेत्र का टिकट किसी अनपढ़ अंगूठा-टेक को ही दिया जाये तो 70 प्रतिशत मतदाताओं का उसे खुला हार्दिक समर्थन मिलेगा।"

यह सब बोलने के बाद मेरे पड़ोसी ने प्रतिक्रिया के लिए विराम दिया। सभी उपस्थितों पर वांछित प्रभाव हुआ था। जाति के नाम पर जो आज तक समीकरण बिठाये जाते थे वे घिसपिटकर पुराने हो चुके थे। अपनी जात के उम्मीदवार ही ने हमेशा दगा दी थी। घर की मुर्गी तो हमेशा ही दाल बराबर रही है। ये पढ़े-लिखे और अनपढ़ का वर्गीकरण बिलकुल नया ताजा और अनूठा था लेकिन इसके आंकड़े तो जनमत संग्रह वाले भी नहीं इकट्ठा करते। फिर इसका क्या भरोसा कि अनोखेलाल जी सच ही कह रहे हैं।

अध्यक्षजी ने प्रश्नवाचक दृष्टि अपने एक सहयोगी की ओर उठायी, "क्या यह सही है?"

सहयोगी हर निर्वाचन-क्षेत्र के आंकड़ों का विशेषज्ञ माना जाता था। वह हकलाया, ''जी, सही प्रतिशत तो नहीं ज्ञात है, किंतु यह सही है कि इस निर्वाचन क्षेत्र में अनपढ़ अधिक हैं। इस क्षेत्र में किसी भी सरकार ने अभी तक साक्षरता-अभियान नहीं चलाया है।...''

अनोखेलाल जी बीच में ही कूद गये, ''मैं बताता हूं ना, 70 प्रतिशत का आंकड़ा सही है। दो वर्ष पूर्व जब इस क्षेत्र को साक्षरता अभियान में लाने की बात चली थी तब यह सर्वेक्षण किया गया था। इसी के आधार पर यह क्षेत्र साक्षरता के लिए प्रस्तावित भी हुआ था। पिछले दो वर्षों में अनपढ़ों की संख्या बढ़ी ही है, घटी नहीं है।''

सभी उपस्थितों ने मौन होकर सभी कुछ सुना, मानो एक नया तथ्य आत्मसात कर रहे हों। कुछ क्षण मौन रहा। फिर अध्यक्ष जी ने ही मौन तोड़ा, ''और कुछ कहना है?'' वह शायद अब अनोखेलाल जी को उठकर जाने का इशारा करना चाहते थे।

''जी, एक अन्य बहुत महत्त्वपूर्ण बात! लेकिन यह बात थोड़ी गोपनीय है और आपका एकांत चाहती है।''

अध्यक्ष जी थोड़ा असमंजस में पड़ गये। निकाला सहयोगियों ने, ''हम थोड़ी देर के लिए बाहर चले जाते हैं। आप अनोखेलाल जी से वार्ता कर लें।''

अध्यक्ष जी जब तक औपचारिक टोकाटाकी करते, ''नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है...' सहयोगीगण कमरे से बाहर निकल गये थे। मौके की नजाकत को भांप मैंने भी उठने का उपक्रम किया लेकिन अनोखेलाल जी ने हाथ पकड़कर रोक दिया, जैसे मैं उनके वांछित एकांत का ही हिस्सा हूं।

अध्यक्ष जी फिर से अनोखेलाल जी से रू-ब-रू हुए, ''कहिये, क्या महत्त्वपूर्ण बात है?''

''सर, राजनीति में अंगूठाछाप आदमी बहुत वफादार होता है। वह सदा-सदा के लिए यसमैन बना रहता है। अनपढ़ होने का अपराध-बोध उसकी हर महत्त्वाकांक्षा की अपने आप ही टांग खींचता रहता है। वह न कभी मंत्री पद का दावेदार होता और न समय-ब-समय ऊंचे-ऊंचे भाषण करता है। वह न संसदीय भाषण चाहता है और न ही टी.वी.

वार्ता। बस एक ही राजनैतिक कर्तव्य समझता है—हाथ उठाना और अपने इष्ट के हर कथन को पानी देना।...''

अध्यक्षजी इस बिंदु पर कुछ प्रभावित-से लग रहे थे। बोले, ''यह तो कोई नयी बात नहीं हुई। तुम कहना क्या चाहते हो, हमें किसी अनपढ़ आदमी को अपना टिकट देना चाहिए?''

''सर, जरा सोचिये, सभी सांसद तो मंत्री नहीं बनाये जा सकते। कुछ तो पिछली लाइन में बैठकर केवल हाथ उठानेवाले भी होने चाहिए। अगर सभी कुछ राजनैतिक इच्छाओं वाले हुए तो कल को जब आप जीतकर सरकार बनायेंगे तो कितनी कठिनाई आयेगी।''

''तुम कहां तक पढ़े हो?'' अध्यक्षजी ने प्रश्न दागा।

पड़ोसी के मुखमंडल पर लाली फैल गयी—लज्जा और शर्म की या गाड़ी पटरी पर आने की खुशी की, यह तो वही जान सकते थे। मुझे कोहनी मारकर बोले, ''यह मेरे पड़ोसी से पूछ लीजिये?''

मैंने खंगारकर सूचित किया, ''बिलकुल अंगूठा-टेक हैं। रोज सुबह अखबार की खबरें भी मैं ही पढ़कर सुनाता हूं।''

अध्यक्षजी के होंठों पर मुसकान खिंच गयी, ''तुम्हारा राजनैतिक इतिहास क्या है?''

''जीरो, सर, कभी राजनीति में कोई काम नहीं किया है। राजनीति के बारे में अबोध बालक है।'' मैं बीच में ही कूद पड़ा। मेरे विचार से वार्ता गलत दिशा में बह निकली थी। अगर समय रहते इसकी दिशा-परिवर्तन की चेष्टा न करता तो संभव है मेरे पड़ोसी अनहोनी करने में सफल हो जाते। कहकर मैंने अनोखेलाल जी की ओर देखा। आश्चर्यजनक रूप से उनकी भृकुटी सामान्य थी। चेहरे पर क्रोध के स्थान पर मुसकान थी। बोले, ''और सर, यही मेरे जैसे उम्मीदवारों का प्लस पाइंट होता है। घोर विरोधी भी ऐसे उम्मीदवार की कमियां निकालकर छीछालेदर नहीं कर सकते। ऐसे उम्मीदवार स्वच्छ छवि वाले उम्मीदवार कहलाते हैं। जरा सोचिये उसी की तो टांग खिंचेगी, जिसकी टांग होगी!''

अध्यक्षजी प्रभावित हो चले थे। पूछा, ''तुमने टिकट के लिए आवेदन किया है या तुम्हारा नाम स्थानीय या प्रादेशिक इकाई में

प्रस्तावित हुआ है?''

''कैसे होता, सर, मेरे तो किसी भी स्थानीय या प्रादेशिक नेता से संबंध नहीं रहे। मैंने तो पहली और अंतिम बार आपको ही अपना नेता माना है।'' अनोखेलाल जी ने स्वर में मिसरी की पूरी बोरी घोल दी थी।

मैंने तुरंत टांग अड़ायी, ''नेता ही नहीं, इनके किसी कार्यकर्ता से भी कभी संबंध नहीं रहे हैं।''

''भाई साहब ठीक कह रहे हैं, सर, मैंने बस आपको ही नेता माना है और इस जीवन में अब आपको ही नेता मानूंगा और किसी नेता को न मैं जानना चाहता और न पहचानना चाहता, फिर चाहे वह अपनी ही पार्टी का क्यों न हो।'' पड़ोसी के अवगुण को भी गुण बनाकर पेश कर दिया था।

अध्यक्षजी विचारमग्न हो गये। फिर मसनद पर करवट बदलकर बोले, ''देखो, अभी भी समय है। यदि यह चुनाव लड़ना चाहो तो आवेदन यहीं मुख्यालय में दे दो। हम विचार करेंगे।''

मेरी सारी इंद्रियां सजग हो गयीं। मैंने तुरंत टोका, ''पर अनोखेलाल जी इलेक्शन जीतेंगे कैसे? इन्हें कौन जानता है? कौन वोट देगा?''

उत्तर तुरंत अनोखेलाल जी ने ही दिया, ''सर, आपकी पार्टी का कोई प्रत्याशी हार सकता है भला। सारे देश में आपकी हवा बह रही है। जिसे जहां से खड़ा कर देंगे वह वहीं से रिकार्ड मतों से जीतेगा। कोई उम्मीदवार भला अपने बूते पर जीतता है। चुनाव आपकी साख, आपकी पार्टी, आपका टिकट जिताता है उम्मीदवार को। मैं क्या, आप किसी भी ऐरा-गैरा को खड़ा कर दीजिये, अगर न जीते तो अपना सिर मुंड़वा लूंगा।'' अनोखेलालजी ने ढेर सारा मक्खन लपेट दिया।

अध्यक्ष जी मुसकराये। मुझे लक्ष्य करके पूछा, ''अगर अनोखेलाल जी चुनाव में खड़े हुए तो आप अपना मत इन्हें देंगे?''

मुझे ऐसे प्रश्न का आभास न था। बड़े धर्म-संकट में फंस गया। हां करता हूं तो जिस पलड़े को झुका रहा हूं वह ऊपर उठ जाता है और न करता हूं तो पड़ोस धर्म जाता है जो मुझे दिल्ली तक खींच

लाया था। पलड़ों को आगामी वार्ता के भरोसे छोड़ मैंने पड़ोसी धर्म पकड़ लिया, "मैं तो दूंगा।"

अध्यक्षजी पुनः मुसकराये—गहन गंभीर मुसकान। बोले, "अब बताओ अनोखेलाल जी हार सकते हैं क्या?"

मैंने फिर से अपना पलड़ा थामा, "लेकिन मेरे अलावा और कौन वोट देगा इन्हें। इनकी जीत संदिग्ध है।"

इस बार उत्तर अनोखेलाल जी ने न देकर अध्यक्ष महोदय ने स्वयं दिया, "हमारी पार्टी देगी। आपके पड़ोसी की अनपढ़ बिरादरी देगी और आप देंगे। ये तीनों वोट विरोधियों की जमानत जब्त कर देंगी।"

मैंने समझ लिया कि अध्यक्ष जी पर रंग चढ़ गया है। भैंस पानी में घुस गयी है। आसानी से नहीं निकलेगी। किंतु मैंने फिर भी जोर लगाया, "किंतु श्रीमान, अनोखेलाल जी तो निपट अनपढ़ हैं। अगर कभी मंत्री पद की शपथ लेनी पड़ी तो ये तो वह भी नहीं ले पायेंगे।"

पड़ोसी ने लपककर उत्तर दिया, "यही तो इस बात की गारंटी है कि मैं कभी मंत्री पद का दावा नहीं करूंगा। मुझे तो बस संसद में पिछली कतार में बैठकर आपके इशारों पर हाथ उठाना है या मेज थपथपानी है।"

मैं जितना ही रोक रहा था, उतनी ही बात अध्यक्ष जी के गले से नीचे उतरती चली जा रही थी। उन्होंने घंटी बजाकर पार्टी सचिव को बुलाया। आदेश दिया, "अनोखेलाल जी अपने ही आदमी हैं। इनसे इनके क्षेत्र की उम्मीदवारी का आवेदन ले लो।"

पड़ोसी ने कृतज्ञता से साष्टांग लेटकर अध्यक्षजी के पांव पकड़ लिये और तब तक नहीं उठे जब तक स्वयं अध्यक्षजी ने उनका कंधा पकड़कर उनको नहीं बिठाया।

अंगूठाटेक पड़ोसी का आवेदन भी मुझे ही लिखना पड़ा। मेरी अब समझ में आ रहा था कि अनोखेलाल जी पूरे इसरार से मुझे क्यों लेकर आये थे। उनकी दूरदृष्टि ने मेरी संभावित आवश्यकता को भांप रखा था। मेरे लिखित आवेदन पर अनोखेलाल जी ने अपना स्याही-भरा अंगूठा टेक दिया।

आवदेन लिखा गया तो क्या। अभी टिकट तो नहीं मिला था।

अतः मैंने पूरी तरह हार नहीं मानी थी। जान-बूझकर आवेदन-पत्र देने के लिए मैं अकेला अंदर अध्यक्ष जी के पास गया। चुगली अकेले में ही तो खायी जाती है। आवेदन-पत्र देते हुए मैंने कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी। बोला, ''श्रीमान जी, अनोखेलाल जी को टिकट देकर आप भारी भूल करेंगे। पड़ोसी होने के नाते मैं इन्हें बचपन से जानता हूं। न तो इनकी कोई विचारधारा है और न कोई राजनैतिक सोच। लोकप्रियता इन्हें छू भी नहीं गयी है। कोई इन्हें घास नहीं डालता। यह दो मिनट भी भाषण नहीं दे सकते।...''

अध्यक्षजी पुनः मुसकराये। बोले, ''जिसे कोई घास नहीं डालता, उसे हम घास डालते हैं।'' मानो सिद्ध कर रहे हों—जिसका कोई नहीं होता उसका खुदा होता है। फिर घंटी बजायी। आदेश दिया, ''अनोखेलाल जी को अंदर भेजो।''

अंदर आते ही अनोखेलाल जी फिर पट लेट गये। फिर अध्यक्ष जी ने उठाया और बोले, ''चुनाव लड़ लोगे?''

''यदि आप आज्ञा देंगे तो जरूर लड़ूंगा। सारा खर्चा भी अपने पास से ही कर लूंगा। पार्टी से कोई आर्थिक सहयोग नहीं चाहूंगा। हां, बाद में उसको मय ब्याज से निकलवा दीजिये। क्योंकि आप जानते ही हैं मेरी कोई महत्त्वाकांक्षा तो है नहीं।''

''काफी समझदार और व्यावहारिक हो।'' अध्यक्ष जी पुनः चहके। फिर से घंटी बजायी। सचिव को आदेश दिया, ''अनोखेलाल जी को इनके निर्वाचन क्षेत्र का टिकट दे दो। यह निश्चिंत होकर अपने निर्वाचन क्षेत्र में जायेंगे और चुनाव की तैयारियां करेंगे।''

आदेश सुनकर सचिव भी सकपकाया। उसने प्रतिरोध किया, ''श्रीमान, आपने टिकटार्थियों की सूची प्रकाशित करने की तिथि परसों रखी है। इससे पहले कमेटी की मीटिंग भी होनी है। इनका भी नाम परसों ही घोषित कर देंगे।''

अध्यक्षजी को यह अच्छा नहीं लगा था। बोले, ''अनोखेलाल जी आज के प्रजातंत्र के श्रेष्ठ प्रत्याशी हैं। ऐसा उम्मीदवार बिरले ही मिलते हैं। मैं इसे खोना नहीं चाहता। तुम अभी टिकट का प्रमाण-पत्र बना लाओ। मैं हस्ताक्षर करूंगा।''

"लेकिन इनके नाम की संतुति तो न क्षेत्रीय इकाई से आयी है और न प्रदेश इकाई से।" सचिव ने एक अंतिम प्रयास किया।

"तो उन दोनों सूचियों में इनका नाम स्वयं लिख दो।" अध्यक्षजी लगभग झुंझला गये थे।

मैं ठगा-सा सारी कार्यवाही को देख रहा था। अनोखेलाल जी को टिकट मिला और उसी दिन मिला। अपने दावे के अनुसार ही वह टिकट लेकर ही घर लौटे।

पार्टी की तेज लहर में वह चुनाव भी जीत गये। सांसद की हैसियत से सदैव सत्ता पक्ष की अंतिम पंक्ति में बैठते रहे। सारा कार्यकाल गुजर गया—न कभी संसद में प्रश्न किया, न उत्तर दिया, न भाषण दिया, न दो शब्द कहे। कभी किसी से कुछ न मांगा और न दावा किया। मुझे अध्यक्ष जी के पारखी शब्द याद आ जाते हैं—

"मेरे पड़ोसी सचमुच आज के प्रजातंत्र के श्रेष्ठ प्रत्याशी हैं।"

भ्रष्टाचार का निर्यात



खुली प्रतियोगिता में जब चौखटेलाल दामड़ी का अचार निर्यात व्यापार पिटने लगा तो उन्होंने मजबूर होकर कोई नयी कौड़ी खेलने की ठानी। आम का अचार, नींबू का अचार, कटहल का अचार, शलजम का अचार विदेशियों को चटखारे तो दे रहे थे पर चौखटेलाल को कमाई नहीं दे रहे थे। गर्दन-तोड़ प्रतिद्वंद्विता चल रही थी। पैसे-पैसे पर मारामारी थीं। लागत से भी कम मूल्य पर लोग अचार विदेशों में पठा रहे थे। कहते थे हमारी सरकार की विदेश नीति यही है कि विदेशी मुद्रा के नाम पर विदेशियों को जी भरकर लाभ पहुंचाओ, तुम्हारा नुकसान सरकारी खजाने से भर दिया जायेगा। ऐसे में सभी संकटों से उबरने के लिए चौखटेलाल ने एक नये अचार के निर्यात की योजना बना डाली। यह अचार का नया ब्रांड था 'भ्रष्टाचार'।

भ्रष्टाचार के निर्यात में असीम संभावनाएं थीं। खुला मैदान पड़ा था। माल निहायत ही चटकारेदार था और प्रतिद्वंद्वी नदारत। अतः एक कुशाग्र भविष्यदृष्टा व्यापारी की तरह, भ्रष्टाचार के निर्यात पर भविष्य में भी एकाधिकार बनाये रखने के लिए चौखटेलाल जी ने सरकार से इस अचार के निर्यात की अनुमति मांगी। निर्यात मंत्रालय से उत्तर

मिला—"निर्यात पर कोई प्रतिबंध नहीं है। आप जो चाहे निर्यात कर सकते हैं। लोगों ने तो देश की आबरू तक निर्यात कर दी, हमने कुछ नहीं कहा। आप तो महज 'भ्रष्टाचार' ही निर्यात करना चाहते हैं। इसमें हमारा कोई दखल नहीं होगा।"

पर चौखटेलाल अटक गये। बिना अनुमति के निर्यात कर दिया तो सारे ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा 'भ्रष्टाचार' निर्यात करने लगेंगे। प्रतिद्वंद्विता बढ़ जायेगी। मुनाफा घट जायेगा। उन्होंने एक असरदार कैबिनेट मिनिस्टर को एप्रोच किया। मिनिस्टर बोले, "काम बहुत कठिन है। पहली बार हो रहा है। न कोई प्रावधान है और न कोई पूर्व परंपरा है। बोलो, मुझे क्या मिलेगा?" चौखटेलाल ने दस प्रतिशत मुनाफे पर सौदा पटा दिया। केंद्रीय मंत्री जी ने आदेश कराये—"भ्रष्टाचार का निर्यात परंपरागत निर्यात नहीं है, लेकिन इसके निर्यात से भारत सरकार को बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त होने की प्रबल संभावना है। चौखटेलाल दामड़ी ने पहली बार 'भ्रष्टाचार' के निर्यात की संभावनाओं को खोजकर उसके निर्यात की योजना तैयार की है अतः उन्हें अन्य अचारों के साथ 'भ्रष्टाचार' के निर्यात की भी छूट दी जाती है। भविष्य में भ्रष्टाचार के निर्यात पर उनका एकाधिकार रहेगा।"

विदेशी मुद्रा सदैव हमारी सरकार की कमजोरी रही है। इसके लिए वह सब कुछ कर सकती है। वह सब कुछ चाहे अच्छा हो या बुरा। अतः इसके लिए, इसके नाम पर एकाधिकार के आदेश भी कर दिये गये।

यह महत्त्वपूर्ण खबर अखबारवाले ले उड़े। खबरें उड़ाने में उन्हें महारत हासिल होती है। बड़े-बड़े अक्षरों में समाचार छपा तो बवंडर उठ खड़ा हुआ। पहला सवाल यह उठा कि देश का एक महत्त्वपूर्ण अचार इस प्रकार खुल्लमखुल्ला विदेशों में क्यों भेजा जा रहा है। 'भ्रष्टाचार' अभी सभी देशवासियों के ही पल्ले पूरा नहीं पड़ पा रहा है, उसके निर्यात से तो देश में इसकी बहुत किल्लत हो जायेगी। अभी भी दस-बीस प्रतिशत सरकारी कर्मचारी और 75 प्रतिशत गैर-सरकारी कर्मचारी इस नायाब अचार के स्वाद से वंचित हैं। दिन-रात कोशिशों से भी इस अचार की एक फांक भी नहीं जुटा पा रहे हैं। ऐसी अवस्था

में इसका निर्यात क्या उचित होगा? जिस माल के घर में ही लाले पड़े हों, उसे विदेश में भेजने की क्या तुक है।

दूसरा विरोध का स्वर एक नामीगिरामी तांत्रिक-स्वामी का था। उनका दावा था कि चौखटेलाल उनका श्रेय मुफ्त में ही छीनकर ले जाना चाहते हैं। चौखटेलाल ने तो 'भ्रष्टाचार' के निर्यात की योजना भर तैयार की है, वह तो उसका कई बार निर्यात भी कर चुके हैं। बस एक जगह चूक गये कि यह निर्यात उन्होंने सरकार को रिकॉर्ड नहीं कराया था। अब भ्रष्टाचार के निर्यात का लाइसेंस तो उन्हें ही मिलना चाहिए, क्योंकि उन्हें तो इसका पूर्वानुभव भी है।

अन्य अचार निर्यातकों की टिप्पणी थी, ''यह खूब रही, अनुमति केवल चौखटेलाल दामड़ी को ही क्यों? हम क्या कम हैं! मौका देकर तो देखो, चौखटेलाल से बढ़िया भ्रष्टाचार निर्यात करके दिखायेंगे। विदेशी मुद्रा का ढेर लगा देंगे, ढेर।''

चौखटेलाल को इन सभी संभावनाओं का पूर्वाभास था। इसलिए उन्होंने असरदार मंत्रीजी से इसकी डील की थी। उन्होंने कच्ची कौड़ियां नहीं खेल रखी थीं। असरदार कैबिनेट मंत्री का लिखित आदेश इन सभी विरोधी बकवासों पर भारी पड़ा और चौखटेलाल दामड़ी खम ठोक कर भ्रष्टाचार निर्यात व्यापार में लग गये।

निर्यात के प्रचार-प्रसार के लिए सभी देशों में अपने सेल्स एजेंट सैट कर दिये। इस बार उसके एजेंटों को साधारण व्यापारियों से नहीं, राजनेताओं से डील करना था। भ्रष्टाचार की भूमि उन्हीं के चारों ओर अधिक उर्वरक होती है। पब्लिक सर्विस करते-करते उनका सारा समय और जीवन इस तरह से उड़नछू होता रहता है कि कभी-कभी ईमानदारी से घर-परिवार में कड़की और फाकों तक की आशंका पैदा होने लगती है। ऐसे में यह भ्रष्टाचार का अचार ही है जो चटखारे दे-देकर घर और परिवार के स्तर को संभाले रखता है। चौखटेलाल इस कड़वे सच को जानते-समझते थे, इसलिए अपनी कैटलॉग में उन्होंने बोल्ड शब्दों में यह लुभावनी चेतावनी अंकित करा दी थी, ''देश के भले के साथ-साथ अपना भला ना भूलें।''

एक और विचार-सूत्र भी दिया था, ''नेताजी, जरा अपने बारे में

भी तो सोचिये!" बहुमूल्य सुझाव भी संकलित किये थे एक अत्यंत चिंताकर्षक शीर्षक के अंतर्गत—'आपकी और आपके परिवार की उन्नति के सुलभ संभव उपाय'।

दामड़ी के लंबे व्यावसायिक अनुभव ने उसे सिखा रखा था कि कुछ कार्यों में महिलाओं को पुरुषों से अधिक दक्षता प्राप्त होती है। उसके अनुसार महिलाएं अचार डाल भी अच्छा सकती थीं और भ्रष्टाचार बेच भी अच्छा सकती थीं। इसलिए विदेश में प्रतिनिधियों के लिए साक्षात्कार में उसने युवकों के स्थान पर युवतियों को तरजीह दी, डिग्रियों के स्थान पर कद-काठी का नाप पूछा, शालीनता के स्थान पर स्मार्टनेस को नंबर दिये, हिंदी के स्थान पर अंग्रेजी को और मस्तिष्क के बजाये चेहरे-मोहरे को अधिक महत्त्व दिया। फलस्वरूप, उसके चुनाव में कई मॉडल, कई टी.वी. आर्टिस्ट, कई फ्लॉप सिने आर्टिस्ट, सिने तारिकाएं और कई एयर होस्टस आ गयीं। लेकिन कुल मिलाकर वह अपने प्रतिनिधियों से संतुष्ट था, जो सुंदर और चुस्त-दुरुस्त थीं।

हर निर्यात का एक छोर विदेशों में होता है। अतः जब स्वदेशी समाचार-पत्रों ने इस महत्त्वपूर्ण निर्यात की चर्चा सुर्खियों में की तो विदेशी समाचार-पत्र भी अपने दायित्व को नहीं भूले। बिना कुछ करे-धरे भ्रष्टाचार अंतर्राष्ट्रीय प्रचार पा गया। चौखटेलाल दामड़ी ने अपने विज्ञापनों में दावा किया था कि भ्रष्टाचार वह स्वादिष्ट अचार है कि इसे जो खाये उसे भी मजा आये और जो खिलाये उसे भी मज़ा आये। रही-सही कसर दामड़ी एंड कंपनी के चित्ताकर्षक प्रतिनिधियों ने पूरी कर दी। विदेशी अचार आयात करनेवाले भला कैसे चूकते। इस स्वादिष्ट अचार के ढेर सारे ऑर्डर चौखटेलाल दामड़ी पर लाद दिये। इतने ढेर सारे ऑर्डरों की चौखटेलाल को भी संभावना न थी। वह इस आकस्मिक लदान से दबने-से लगे।

दबाव चाहे जितना पड़ रहा हो, लेकिन विदेशी मुद्रा मोटे पाइप के पानी के बहाव की तरह देश में आ रही थी। असरदार मंत्री अपनी इस डील पर अति प्रसन्न थे। उनकी यह अति प्रसन्नता उनके सहयोगी मंत्री को खल गयी। वह भी कम असरदार नहीं थे। सच पूछो तो आयात-निर्यात व्यापार से सीधा संबंधित थे। उन्होंने असरदार मंत्री की

यह अति-प्रसन्नता तोड़ने की ठान ली।

उसी विरोधी और पूर्वानुभवी तांत्रिक से संसद में प्रश्न उठवाया—"भ्रष्टाचार के निर्यात का एकाधिकार किन परिस्थितियों में और किन कारणों से दिया गया?"

उत्तर असरदार कैबिनेट मंत्री ने खुद बैठकर तैयार कराया, "बहुमूल्य विदेशी मुद्रा का सवाल था। यह निर्यात इससे पूर्व हो ही नहीं रहा था। दामड़ी एंड कंपनी के कारण ही आज यह निर्यात व्यापार अन्य सभी निर्यात व्यापारों से अधिक विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है।"

प्रतिद्वंद्वी मंत्री ने पूरक प्रश्नों के माध्यम से सुझाव दिलाया, "यदि दामड़ी एंड कंपनी का एकाधिकार समाप्त करा दिया जाये तो भ्रष्टाचार के निर्यात से डबल विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। सरकार चाहे तो कुछ प्रसिद्ध निर्यातक इसकी गारंटी भी दे सकते हैं।"

इस धोबी पछाड़ से दामड़ी एंड कंपनी के कैबिनेट मंत्री चित्त आये। सांसदों की आम राय के प्रभाव में एकाधिकार छूमंतर हो गया। दरअसल समाज में ईर्ष्या का एकाधिकार नहीं होता। यह सर्वत्र व्याप्त है। सभी सांसदों में पायी जाती है।

अब देश के हर निर्यातक के लिए भ्रष्टाचार का निर्यात निर्विघ्न खुल गया है। हर कोई देश को विदेशी मुद्रा कमाकर दे सकता है। निर्यातक ही क्या, देश का हर नागरिक अब भ्रष्टाचार का निर्यात करने के लिए स्वतंत्र है। दरवाजा चौपट खुला पड़ा है। यह बात और है कि निर्यात के साथ-साथ असरदार नागरिक कभी-कभी इसका आयात भी कर लेता है। कुछ भी कहो, इसकी बदौलत विदेशी मुद्रा भंडार फूलता ही चला जा रहा है।

अपना देश भ्रष्टाचार व्यापार में अब नये-नये कीर्तिमान स्थापित कर रहा है और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में शीर्ष स्थान बनाये है।

का नमक खा रहा हूं और इसकी सारी परंपराओं से वाकिफ हूं। मैं जांच में वही कार्यवाही कर रहा हूं जो आज तक इस विभाग में होती रही है।'' जांच अधिकारी अभी कुछ समझ नहीं पा रहा था या फिर शायद समझना नहीं चाह रहा था।

सर ने बेचैनी से करवट बदली, ''तुम्हें ध्यान रखना चाहिए कि तुम एक महत्त्वपूर्ण और संवेदनशील घोटाले की जांच कर रहे हो। इसमें विभाग की परंपराओं का नहीं, नियम और निर्देशिकाओं का पालन करना है। हम नहीं चाहते कि कहीं से भी यह आवाज़ उठे कि अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर छेड़छाड़ की गयी है। समझे!''

पर जांच अधिकारी ठीक से कुछ भी नहीं समझा। उसने पुनः पूछा, ''क्या हमारी जांच परंपरा और निर्देशिका में अंतर है, सर?''

''हां, हो भी सकता है। कभी-कभी कहीं-कहीं गलती भी हो जाती है। कभी-कभी हमारा जांच अधिकारी अपराधी को पकड़ने के लिए आवेश में आ जाता है। ठोस सबूत जुटाने के जुगाड़ में निर्देशिका की सीमाओं का भी अतिक्रमण कर देता है।'' निर्देशक का स्वर गंभीर था।

''लेकिन इसके तो हमेशा बड़े अच्छे परिणाम निकले हैं, सर! इन कार्यवाहियों के कारण ही जांच ब्यूरो बड़े-बड़े छंटे हुए अपराधियों को पकड़ने में कामयाब रही है।''

''देखो, जो मामला इस समय तुम्हारे हाथों में है, वह कुछ ज्यादा ही पेचीदा है। इसमें कानून और निर्धारित निर्देशों का कड़ाई से पालन होना जरूरी है।'' निर्देशक ने कुछ विनम्रता से समझाया।

''चाहे अपराधी हाथ से निकल भागे, सर?'' जांच अधिकारी ने अवाक् हो प्रश्न किया।

जांच अधिकारी ने जो पूछा था वह उसे नहीं पूछना चाहिए था। निर्देशक महोदय को तो कभी इसकी आशा नहीं थी। सरकारी विभागों में ऐसे निर्लज्ज प्रश्न नहीं पूछे जाते और अगर गलती से पूछ भी लिये जाते हैं तो उनका कोई जवाब नहीं दिया जाता। यही परंपरा है, यही नियम है। अतः उत्तर में निर्देशक महोदय ने उबलती आंखों से जांच अधिकारी को घूर लिया; जैसे उसकी अक्षम्य भूल का आभास करा रहे हों।

जांच अधिकारी अन्य सरकारी अधीनस्थों की तरह आंखों के ये आभास समझने में सिद्धहस्त था। उसने 'यस सर' कहा, जोरदार सैल्यूट (सलाम) ठोका और कमरे से बाहर आ गया।

दफ्तरों में महत्त्वपूर्ण फाइल डील करनेवाले सदैव ही महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। जांच अधिकारी भी फाइल के अनुपात से ही महत्त्वपूर्ण हो गये। दफ्तर के सभी सहयोगी अब उन्हें प्रायः घेरे रहने लगे, बिना मांगे सलाह देने लगे, मार्ग प्रशस्त करने लगे, प्रगति की समीक्षा करने लगे। गर्ज यह कि जांच के हर पहलू में रुचि लेने लगे; मानो जांच न हुई, क्रिकेट का मैच हो गया।

जांच ब्यूरो का घोषित विश्वास था, 'सांच को आंच नहीं'। फिर भला इस घोटाले को कैसे आंच लग जाती, जब तक कोई जान-बूझकर ही नहीं लगाता। घोटाला खुलने लगा। जनता-जनार्दन दौड़-दौड़कर सबूत इकट्ठा करने लगी। जांच ब्यूरो को पूरा नहीं, खुलकर सहयोग मिला। भला बड़े नेता का बड़ा भ्रष्टाचार जनता कैसे आसानी से हजम कर लेती! बड़े नेताजी का पहले जांच में नाम उभर आया था, अब वह धीरे-धीरे घोटाले के केंद्रबिंदु में अटक गया। अटका भी ऐसा कि पूरा जोर लगाने पर भी नहीं निकल पा रहा था। शीर्षधारी नेताजी यहां भी शीर्षधारी ही बने रहे थे। अतः अब घोटाला महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो चला था।

अकसर घोटाले देश और उसकी जनता से जुड़े होते हैं। उनसे देश की जनता को ही हानि या लाभ होता है। सरकार पर उनका कोई प्रभाव नहीं होता। लेकिन यह घोटाला सरकार से भी जा जुड़ा था। इसमें देश या जनता से पहले सरकार की उठा-पटक होती थी, सो इसका अत्यंत संवेदनशील होना स्वाभाविक हो गया था। आखिर को सारी दिक्कतें भोगकर भी जांच अधिकारी ने, जांच ब्यूरो की नियमावली की सभी सीमाओं में बंधकर भी जांच कार्यवाही पूर्ण कर ली। रिपोर्ट अत्यंत गोपनीय थी, अतः हमें भी कैसे पता चलती और जब हमें ही पता नहीं चली तो भला आपको कहां से बता दें?

लेकिन रिपोर्ट जांच ब्यूरो के निर्देशक को पता चल गयी। वह तो चलनी ही थी। उसके सामने तो पेश ही की गयी थी। सारे घोटाले

का एक केंद्रबिंदु था और उसके चारों ओर सैकड़ों व्यक्तित्व छोटे-छोटे स्वार्थों को बगल में दबाये चक्कर लगा रहे थे।

निर्देशक ने जांच अधिकारी को फिर बुला भेजा। घूरकर देखा और प्रश्न दागा, ''आपने केंद्रबिंदु कैसे निर्धारित कर दिया?''

''सभी साक्ष्य और घटनाएं बता रही हैं, सर?''

''कोई ठोस सबूत?''

''सभी लोगों ने बयान दिये हैं, सर।''

''लोग तो झूठे बयान भी दे सकते हैं।''

''सरकारी दस्तावेजों में प्रविष्टियां हैं, सर।''

''सरकारी दस्तावेज तो सरकारी कर्मचारी तैयार करता है। उसका किसी नेता से क्या संबंध, उसका भला नेता पर क्या दायित्व है?''

''पर सर, नेताजी के उन दस्तावेजों पर हस्ताक्षर हैं।''

''नेता लोग हस्ताक्षर गुड फेथ में करते हैं। अगर अधीनस्थ ने बैड फेथ में दस्तावेज तैयार किये हैं तो गुड फेथ के हस्ताक्षर दोषी क्यों होंगे?''

''लेकिन सर, यहां अधीनस्थ अफसर का बयान है कि उसने नेताजी के आदेशों का ही पालन किया था।''

''अपनी जान बचाने के लिए अधीनस्थ अफसर इसके अलावा और कह भी क्या सकता है?'' निर्देशक महोदय हर संभव स्तर से नेता जी की जान बचाने पर तुले थे। आखिर जान बचाना एक धार्मिक कार्य है और सत्ताधारी नेता की जान बचाना तो युगधर्म भी है। नमक का भी सवाल पैदा होता है। जीवन भर का नमकहलाल कुछ मामलों में नमकहराम तो नहीं हो सकता।

पर जांच अधिकारी ने पूरी लगन से जांच की थी और हर पहलू को नापा-तोला था। आसानी से वह भी हार माननेवाला नहीं था। उसने फिर पूछा, ''और सर, नेताजी के मित्रों और रिश्तेदारों के नाम से जो बड़ी-बड़ी रकमें बैंक से निकाली गयी हैं?''

''बैंकों में आजकल क्या-क्या गोलमाल नहीं होता है। किसी के नाम से भी झूठा खाता खोलकर रकम निकाली जा सकती है। एक और केस में ऐसे घोटाले की जांच नहीं हो रही है क्या?''

"पर, सर...।"

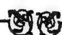
"देखो, बहस मत करो। ज्यादा से ज्यादा तुम नेताजी के मित्रों और रिश्तेदारों को दोषी मान सकते हो, जिनके नामों में ये रकमें निकली हैं, लेकिन इससे नेताजी पर आरोप कैसे लग सकता है?"

"लेकिन सर, उन नामों में रकम निकालने के आदेशों पर तो नेता जी के ही हस्ताक्षर हैं। उन्हीं के लिखित आदेशों पर सभी चैक बनाये गये हैं।"

"गुड फेथ, भाई, गुड फेथ। नेताओं को सरकारी अफसरों पर विश्वास करके गुड फेथ में हस्ताक्षर करने होते हैं। वे एक-एक लाइन नहीं पढ़ते हैं। महज हस्ताक्षरों से उनकी जिम्मेदारी फिक्स नहीं की जा सकती, कोई और ठोस सबूत बताओ?"

जांच अधिकारी खामोश हो गया। उसके ज्ञान और विवेक में उसके सारे सबूत ठोस थे। कहीं कोई खोखलापन नहीं था। सबूत इतने ठोस कि ऐसे ही सबूतों के आधार पर ही सैकड़ों लोग आजीवन कारावास भुगत रहे थे। लेकिन निर्देशक महोदय थे कि उन्हें आज कोई सबूत ठोस ही नहीं लग रहा था। और न जाने सारे सबूत अचानक खोखले क्यों लगने लगे थे। अब जांच अधिकारी सोच रहा था कि इतने ठोस सबूतों को और ठोस कैसे बनायें। बहरहाल सर्वोच्च अधिकारी का आदेश था इसलिए जांच अधिकारी ठोस सबूतों को और ठोस बनाने में लग गया। अब यह जांच तब तक चलती ही रहेगी जब तक जांच अधिकारी के सबूत जांच ब्यूरो के निर्देशक को ठोस न लगने लगें।

ख़याली पुलाव



पवन-पुत्र हनुमान को उसकी शक्ति का बोध रीछपति जामवंत ने कराया था। हमें हमारी श्रीमती जी ने स्मरण कराया कि रसोईघर में एक बार भी न घुसने के बावजूद पाक-विद्या में हम भी सिद्धहस्त हैं और 'ख़याली पुलाव' किसी भी अच्छे-से-अच्छे रसोइए से बेहतर पका सकते हैं। जिस समय श्रीमती ने हमें यह स्मरण कराया था उस वक्त समय और काल के प्रभाव में हमें उनकी यह उक्ति उलाहना लगी थी। बहुत बुरा लगा था। गुस्सा भी आया था और माथा भी गरम हो गया था। लेकिन गुस्सा थूकने पर और माथा ठंडा करने पर हमें उनकी उक्ति में साक्षात् सच के दर्शन हुए। पचास साल बाद ही सही, आखिर कोई तो खूबी हममें भी निकली ही। हम नाहक ही परेशान रहते कि पाक-विद्या का ए-बी-सी-डी भी हमें नहीं आता। अरे, बकौल हमारी बीवी हमको तो खयाली पुलाव पकाने में महारत हासिल है। हमारे हाथ के बने ये ख़याली पुलाव छब्बीस साल के दाम्पत्य जीवन में हजारों बार खा चुकी थी और हर बार उसके अद्‌भुत स्वाद ने उन्हें आत्मविभोर कर दिया था। आपने कभी ऐसा पुलाव चखा है, जिसको जीभ पर रखते ही आप सातवें आसमान पर चढ़ जायें। जी हां, मेरी पत्नी ने

खाया है—मेरे हाथ का बना हुआ। जब उन्होंने तैश में आकर मेरी इस विलक्षण प्रतिभा का परिचय मुझसे कराया तो मुझे उन पर अपार स्नेह उमड़ आया। मैंने पूछा, "प्रियतमे, मुझे स्मरण कराओ कि मैंने कब-कब और कहां-कहां तुम्हें अपने ख़याली पुलाव खिलाये हैं?"

पत्नी को पता है कि मुझे उसकी क्रोधित छवि अधिक भाती है। अतः अपनी वही छवि ओढ़ते हुए पैर पटककर जवाब दिया, "अरे यह पूछो कि कब नहीं खिलाया। शादी से पहले और शादी के बाद बस यही तो खाती रही हूं। यही खिला-खिलाकर मुझे चार बच्चों की मां बना दिया। आज तक किराये के मकान में सड़ा रखा है। निठल्ले कागज काले करते रहते हो और आटा-दाल की चक्की में पीस रखा है।"

पत्नी ने एक ही प्रवचन में कई भिन्न-भिन्न संदर्भों को छू दिया था। इस तरह उनके गुस्से की भड़ास तो निकल रही थी, लेकिन वार्ता का साहित्यिक क्रम नहीं बन पा रहा था। एक लेखक की पत्नी में इतना कौशल भी न हो कि अपनी बात को ठीक से क्रमबद्ध रूप में कह सके तो लानत है लेखक पति पर। अतः हमने समझाया, "प्रियतमे, तुम्हारे कथन में एकरसता नहीं है। तुमने एक साथ चार सुर छेड़ दिये हैं जिससे सारा राग बेसुरा हुआ जा रहा है। अच्छा हो कि क्रम से एक-एक सुर का रसास्वादन हो जाये। क्रम पर तुम्हारा अधिकार है—चाहे चार बच्चों की मां से शुरू हो जाओ, चाहे किराये के मकान से। शादी के पहले का क्रम ले लो या निठल्ले और काले कागजों का। पर एक बार में एक ही राग छेड़ो।"

मेरे इस ठंडे मिजाज ने उनका पारा सातवें आसमान पर चढ़ा दिया, "तो अब मेरे जख्म भी तुम सुर-ताल में सुनना चाहते हो। हाय राम, मैं किसके पल्ले पड़ गयी! इससे तो जन्म भर कुंवारी ही रहती तो अच्छा था।" और श्रीमती जी की आंखों से नदी-नाले बह निकले। साहित्य में करुण रस से तो हमारा परिचय था पर इस रुदन रस से कभी सरोकार न पड़ा था। इसलिए हम घबरा गये। बोले, "यह क्या? कोई अड़ोसी-पड़ोसी सुन लेगा तो क्या होगा? सारी इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी।"

धर्मपत्नी जी रुदन कार्य को इंटरबेल दे तुनकीं, ''कौन-सी इज्जत है जो मिट्टी में मिल जायेगी! जब पड़ोसियों से आटा-दाल उधार मांग-मांगकर लाती हूं तब कहां बची रह जाती है यह मुई इज्जत। तुम्हारे ख़याली पुलाव परिवार का पेट नहीं भर सकते। समझ लो।''

अब यह कोई नयी बात तो थी नहीं जो मैं समझता। श्रीमती जी लाखों बार समझा चुकी थीं और मैं लाखों बार समझ चुका था। लेकिन समझने-बूझने से ही तो सब कुछ नहीं हो जाता। मैंने दुलार में कहा, ''देखो प्रिय, अब सुर में आ जाओ। प्रारंभ से बताओ कि हम आज की स्थिति में कैसे पहुंचे। अपने इतिहास का समुचित अध्ययन करके ही तो वर्तमान की भूलों का निराकरण कर पायेंगे।''

''भाड़ में जाये तुम्हारा इतिहास और उसका निराकरण! हज़ार बार बता चुकी हूं पर कोई फायदा नहीं हुआ है। मुझे और मत बनाओ।''

''क्यों न हम एक बार फिर कोशिश कर देखें? देखो, लाख बार गिरने के बाद भी चींटी चढ़ना नहीं छोड़ती। उसी से कोई शिक्षा ले लें।''

''अब शिक्षा की जरूरत मुझे नहीं है, तुम्हें है—समझे।''

मैंने आत्मसमर्पण कर दिया, ''चलो, मुझे ही सही पर कुछ तो कहो। हां, तो शादी से पहले मैंने कौन से चावल पकाये थे?''

''तुमने कहा था कि तुम सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हो। नोबेल प्राइज तो पक्का है। पूरे तीस लाख मिलेंगे। उनमें से दस लाख का एक आलीशान बंगला खरीदेंगे और शेष बीस लाख को ब्याज पर लगा देंगे। तीस हजार रुपये महीने घर बैठे ब्याज के आयेंगे। मस्ती मारेंगे। पर मरे आज तक तीस लाख तो क्या, तीस टके भी नहीं आये। मस्ती नहीं, मक्खी मार रहे हैं।'' श्रीमतीजी ने उलाहना दिया।

''यह तो मैंने गलत नहीं कहा था। नोबेल प्राइज तो मुझे मिलना ही है। मैंने हिम्मत नहीं हारी है, अभी नहीं मिला तो क्या हुआ, मिल जायेगा। जरा-सा टाइम सिक्वेंस गड़बड़ा गया है। पर इसका मतलब यह तो नहीं कि नोबेल प्राइज ही हाथ से निकल गया हो। तुम्हें धीरज रखना चाहिए।''

"खाक धीरज रखना चाहिए! मिल गया नोबेल प्राइज! धोबिन तक तो कह रही थी कि बाबूजी क्या लिखते हैं, कुछ समझ में तो आता नहीं। उन नोबेल प्राइज वालों के क्या खाक समझ में आयेगा भला।"

"देखो! देखो! यह सरासर मेरा अपमान है। मेरे साहित्य का अपमान है। मैं तुम्हारी धोबिन के स्तर का नहीं लिखता हूं जो उसकी समझ में आ जायेगा, तुम्हें कुछ समझना चाहिए।" मैं गहराई तक आहत हुआ था।

"तुम तो मेरे स्तर का भी नहीं लिखते। तुम्हारा लिखा-पढ़ा मेरे सिर के ऊपर से गुजर जाता है। शादी से पहले सोचा था कि शायद कुछ ज्यादा अच्छा लिखा है इसलिए समझ नहीं आता। अब पता चल रहा है कि इसे समझने के लिए किसी और लोक से आदमी बुलाने पड़ेंगे। इस लोक की समझ में तो तुम्हारी आड़ी-टेढ़ी रेखाएं आने से रही।"

"देखो, मैं जिनके लिए लिख रहा हूं उनकी समझ में आयेगा। एक दिन जरूर आयेगा, वही मुझे नोबेल प्राइज देंगे। मैं उनके लिए लिखता हूं। इन कुपढ़, अनपढ़, अशिक्षित, असभ्य देशवासियों के लिए मुझे नहीं लिखना है। ये मेरा लिखा हुआ मजबूरी में कुंजी खोल-खोलकर पढ़ेंगे, वरना एक को भी डिग्री नहीं मिलेगी। तू समझती क्या है। तूने अभी मुझे पहचाना ही नहीं।" मैं तैश खा चुका था।

"जी नहीं, मैंने जान भी लिया और पहचान भी लिया—तुम्हारे इन रद्द कागजों को इस लोक में कोई नहीं पढ़ने वाला। इसके लिए परलोक जाना होगा। वहीं तुम्हें तुम्हारा नोबेल प्राइज मिलेगा। इस लोक में तो मिलने से रहा।"

श्रीमती जी के दावे में दम था। वह मेरे साथ दांपत्य-सूत्र में इस लोक में बंधी थी। परलोक में तो वह मेरी धर्मपत्नी होगी नहीं। मेरा पुलाव भी इसी लोक के लिए पका था, परलोक के लिए नहीं। इसलिए यह मेरे लिए विचारणीय प्रश्न था। पर मैंने इसी बिंदु पर अटके रहना श्रेयस्कर नहीं समझा। अतः वार्ताक्रम को आगे सरकाया, "खैर, छोड़ो इस मामले में तुम्हारे-मेरे विचार नहीं मिल सकते। पहले भी कभी नहीं मिले। तुम अब यह बताओ कि शादी के बाद मैंने तुम्हें कौन-कौन से

पुलाव खिलाये थे?''

''मैं फिर कहती हूं कि मेरा मुंह मत खुलवाओ; वरना इतना जली-कटी सुनोगे कि होश ठिकाने आ जायेंगे।'' श्रीमती जी ने मुझे चेताया।

पर भला हम चुनौती से कहां डरनेवाले थे। बोले, ''देखो प्रिये, साहित्य और साहित्यकार को सभी रसों से होकर गुजरना पड़ता है। अब तुम्हारे जले-कटे रस से घबराकर हम तुम्हारा मुंह तो बंद नहीं करायेंगे।''

''तो सुनो, तुमने गोविंद के पैदा होने से पहले क्या कहा था?''

''मुझे तो कुछ याद नहीं आ रहा है। तुम ही बताओ हमने क्या कहा था भला?''

''कहा था मुझे प्यारा-सा बेटा दे दो, मैं तुम्हें हीरों का नौलखा हार बनवाऊंगा।''

''हां, याद आया, कहा था, पर मैं अपने वायदे से मुकरा कहां हूं। हीरों का नौलखा हार आपको मिलेगा और जरूर मिलेगा—मेरा वादा है। बस जरा इंतजार करना होगा। कहीं से कुछ पैसा आ जाये, फिर देखना वह हीरे का हार तुम्हारे गले में कैसा दमकेगा।''

''इंतजार, तुमने तो सारी जिंदगी को ही इंतजार बना दिया है। पता है वह प्यारा-सा बेटा अब सोलह साल का हो गया है। वह छियासठ साल का भी हो जायेगा पर तुम तो यही कहते रहोगे—बस अभी थोड़ा-सा इंतजार और।''

''अरे भाई, गोविंद के बाद तो तुमने मुझे प्यारी-सी चुनमुन भी दी है। फिर अपनी सुई गोविंद पर ही क्यों अटका रही हो।''

''जी हां, जब चुनमुन मांगी थी तब भी कहा था कि अगर एक प्यारी-सी बिटिया और दे दूं तो चार बैडरूम का एक शानदार बंगला बनवा दूंगा—पूरे पांच सौ गज पर। कागज पर उसका नक्शा भी खींच दिया था। याद है ना?''

''पर बंगला बनवाने की बात कैंसिल होकर बना-बनाया खरीदने की बात तय हो गयी थी। बनवाने के झमेलों से तुम भी घबरा गयी थीं।''

"तो वह बना-बनाया भी कहां है? मैं तो इसी किराये की दो कोठरियों में सड़ रही हूं।" श्रीमती जी बिफरीं।

"देखिये, इसमें मेरा ज्यादा दोष नहीं है। चार बैडरूम का कोई अच्छा-सा खाली बंगला हमें अभी तक मिला भी तो नहीं है।"

"और मिलेगा भी नहीं। कम से कम इस जन्म में तो नहीं। क्योंकि अगर गलती से कोई मिल भी गया तो उसको खरीदने के लिए अंटी में पैसा कहां है। इससे तो अच्छा है कि ना ही मिले। न होगा बांस, न बजेगी बांसुरी।"

"देखिये, यह मेरे ऊपर सरासर इल्जाम है। कोई सही-सा बंगला मिल जायेगा तो उसके लिए पैसों का इंतजाम तो ही हो जायेगा। आपने शेर नहीं सुना, 'खुदा जब हुस्न देता है, नज़ाकत आ ही जाती है।' बंगला मिलेगा तो उसकी खरीदारी का भी इंतजाम हो जायेगा। इसमें कौन-सी प्रॉब्लम है।"

"रहने दीजिये, रहने दीजिये। मैंने आपके ये ख़याली पुलाव बहुत देख लिये हैं। तुम्हें बस बातें बनाना आता है। इसी तरह तुम दो बार और मुझे धोखा दे चुके हो।"

"वो कब?" मैंने जिज्ञासा जाहिर की।

"धोखा देकर ही तो जुगनू और भोलू मुझसे पैदा कराये हैं?" श्रीमती जी महा क्रोधित थीं।

"वो कैसे?"

"जुगनू से पहले तुमने कहा था—मैं कार खरीदूंगा और भोलू को इस शर्त पर पैदा किया गया था कि तुम मेरे नाम से दो लाख की एफ.डी.आर. कराओगे। करायी?"

"भई, मैंने मना तो नहीं किया।" मैं बचाव की मुद्रा में आ गया था।

"पर करायी भी तो नहीं?" श्रीमती जी उखड़ चुकी थीं। उन्होंने दांत निपोरे। उन्होंने फिर वही छवि ओढ़ ली थी जो मुझे अतिशय प्रिय थी।

मैं समझौते पर उतर आया। "देखिये, अच्छी पत्नी को अपने पति पर भरोसा होना चाहिए। आप कुछ भी समझें, मैं अभी तक अपने वादे

से नहीं फिरा हूं। सारे वादे गिन-गिनकर पूरा करूंगा। बस सही वक्त और मौके का इंतजार है। आपको इस बात का फख्र होना चाहिए कि मैं उन पतियों में से नहीं हूं जो अपनी पत्नी से वादा करके मुकर जाते हैं। मेरा कहा पत्थर की लकीर होता है।''

''बस-बस, रहने दीजिये। बहुत हो गया। मैं आपके ये झांसे बहुत खा चुकी हूं। शादी से पहले और शादी के बाद आज तक यही ख़याली पुलाव खिलाते रहे हो। अब और नहीं खाऊंगी।'' श्रीमती जी पैर पटकती हुई रसोईघर में चली गयीं, आटे और दाल का गणित बैठाते। अब मुझे अपने निपुण हाथों से कोई नया पुलाव पकाना होगा जिसकी खुशबू से ही मेरी पत्नी सब कुछ भूल मंत्रमुग्ध हो जाये।

यह सब कुछ हुआ, पर मैं सचमुच नहीं समझ पा रहा हूं कि क्या स्त्रियां सचमुच मान बैठती हैं कि उनके पति या प्रेमी उनके लिए आसमान के तारे तोड़ लायेंगे। उनकी मांग चांद और सितारों से सजा देंगे। उनका दामन संसार की सारी खुशियों से भर देंगे। क्या पति और प्रेमियों के कभी सच न हो सकनेवाले असंभव खोखले दावे, उनके सब्जबाग, उनके दिवा स्वप्न सचमुच उनके महल सजा देते हैं? या फिर इन सब्ज़बागों का उलाहना देते रहना, इन्हें याद दिलाते रहना पत्नी और प्रेयसी की स्वाभाविक अदा भर होती है। आखिर पत्नियां अपने पतियों के ख़याली पुलाव के छलावे में बार-बार आने के बाद भी ये हसीन धोखे क्यों खाती रहती हैं?

नकल-समर्थक



नये मुख्यमंत्री ने आते ही नकल-विरोधी कानून वापस ले लिया। उन्हें मालूम था कि नकल करते-करते ही तो जापान इतनी तरक्की कर गया है। अगर बच्चे बड़ों की नकल नहीं करेंगे, तो फिर कौन करेगा? सारी युवा पीढ़ी पथ-भ्रष्ट नहीं हो जायेगी, अगर नकल के लिए स्वतंत्रता नहीं होगी? खुली छूट नहीं होगी तो कहां जायेगा देश का युवा वर्ग? कैसे मिलेगी उसे दिशा, दृष्टि, रास्ता? दिन-रात सिखाते-सिखाते थक गये कि महापुरुषों के चरण-चिह्नों पर चलो। उनका अनुसरण करो, उनकी नकल करो और अब कानून बनाकर नकल करने पर ही रोक लगायी जा रही है। 'नकल' जैसे विलक्षण गुण को कानूनी अपराध बनाया जा रहा है। मुख्यमंत्री जी स्वयं भी बड़े-बड़े नेताओं और अभिनेताओं की नकल करके और चाणक्य-बुद्धि का अनुसरण करके ही मुख्यमंत्री पद पर आसीन हुए थे। अतः सत्ता संभालते ही आदेश पारित किये—'नकल की खुली छूट होगी।'

नौकरशाही की एक बुरी आदत वजह-बेवजह राजनीति में टांग अड़ाने की रहती है। अतः मुख्य सचिव ने समय देखकर टोका—"हमारा युवा वर्ग चाहे सारा जीवन नकल करे, पर अगर परीक्षा के तीन घंटों

में उसे नकल न करने दी जाये, तो क्या बिगड़ जायेगा।''

नये मुख्यमंत्री घिसे-पिटे नेता थे। थोड़ी देर को दार्शनिक बन गये, ''मेरे भाई, सारा जीवन ही एक परीक्षा है। कठिन परीक्षा की घड़ियों में ही तो महापुरुषों और महान ग्रंथों से संबल मिलता है, उनका अनुसरण करना होता है, उनकी सीखों को अपने जीवन में उतारना होता है, उनकी नकल करनी होती है। क्या परीक्षा की बेला में हम यह सब भूल जायें और सिद्ध कर दें कि हम पथ-भ्रष्ट हो चुके हैं?''

मुख्यमंत्री की इस खुली छूट का सारे प्रदेश पर व्यापक असर हुआ। सभी परीक्षायें हर्षोल्लास के साथ संपन्न हुईं। सभी विद्यार्थियों ने बड़े-से-बड़े लेखक और अच्छी-से-अच्छी पुस्तक से खुली नकल की। फलस्वरूप सभी परीक्षार्थी टॉप कर गये। फेल होने का तो किसी का सवाल ही नहीं उठा, घर-घर में मिठाइयां बंटीं। सेंट-परसेंट रिजल्ट रहा। मुख्यमंत्री जी की राजनीतिक ख्याति में चार चांद लग गये। अपनी करनी पर प्रफुल्लित उनका मन फूलकर कुप्पा हो गया।

फलस्वरूप मुख्यमंत्री जी के प्रदेश में नकल की नैसर्गिक कला समस्त सीमायें एवं विरोध तोड़कर अबाध गति से स्फुटित एवं पल्लवित होने लगी। लगने लगा कि अब नकल की प्रतिभा इस प्रदेश में पराकाष्ठा को ही छूकर दम लेगी।

एक दिन मुख्यमंत्री जी की तबीयत कुछ ढीली थी—कुछ थकावट का असर, कुछ ठंड का प्रकोप। मन आराम को अलसाया तो उन्होंने निजी सचिव को आदेश दिया, ''मेरे आज के सारे कार्यक्रम रद्द कर दो।''

कार्यक्रम खासे महत्त्वपूर्ण थे, सुदूर प्रदेश का दौरा था, जिला ऑफिसरों के कार्यों की जांच-पड़ताल थी और जिले की आम सभा को संबोधित करना था, लेकिन कोई कार्यक्रम मुख्यमंत्री के आदेश से अधिक महत्त्वपूर्ण तो नहीं होता, अतः सभी कार्यक्रम रद्द कर दिये गये।

सुबह चाय की चुस्कियों के बीच अखबार पर नजर पड़ी, तो मुख्यमंत्री चौंके। मुखपृष्ठ पर एक विराट सभा को संबोधित करते हुए उनकी रंगीन फोटो छपी थी। अचकचाकर समाचार पढ़ा, तो वही सब बातें कही गयी थीं, जो अकसर वह अपने भाषणों में कहते रहे हैं।

ध्यान से फोटो का निरीक्षण-परीक्षण किया, तो हू-ब-हू उनका ही चेहरा था। वही आकार-प्रकार था। वही स्टाइल। लगा कि शायद किसी ने मज़ाक किया है और किसी पुरानी सभा का फोटो दोबारा छाप दिया है। उन्होंने जोर से घंटी दबायी।

निजी सचिव सामने थे। भृकुटि तानकर अखबार सामने कर दिया, "यह क्या है?"

सचिव मुसकराया, "यह तो आपका ही चमत्कार है। हमको तो कार्यक्रम रद्द कराने का आदेश दे दिया और स्वयं साधारण नागरिक की तरह ट्रेन से पहुंच गये। रंगे हाथों कमियां पकड़ने का यह अच्छा ढंग है। सभी अधिकारी प्रशंसा कर रहे हैं। बहुत से कामचोरों और हरामखोरों में अनजाना भय व्याप्त हो गया है।"

मुख्यमंत्री जी ने एक बार फिर समाचार पर निगाह डाली। लिखा था—'मुख्यमंत्री जी ने अफसरों को खूब हड़काया। बहुत खरी-खोटी सुनायी। हमेशा तत्पर और सावधान रहने के आदेश दिये। कुछ को अंतिम चेतावनी तक दे डाली।'

मुख्यमंत्री जी ने सिर खुजलाया। यह कौन डुप्लीकेट पैदा हो गया। हू-ब-हू नकल कर डाली। ऐसा तो पिक्चर्स में होता है। जीवन में तो पहली बार देख रहे थे। मामला संवेदनशील था। राजनीतिक दृष्टि से भी और नकल-समर्थक की छवि के दृष्टिकोण से भी। निजी सचिव से और कुछ कहना-सुनना श्रेयस्कर नहीं समझा।

सचिवालय पहुंचते ही गुप्तचर-प्रमुख को तलब किया। वह इस प्रकरण को पूरी गंभीरता से तोलना-समझना चाहते थे। तह तक पहुंच जाना चाहते थे। पूछा, "कल का प्रोग्राम कैसा रहा?"

"खूब जमा। आपने तो भाषण में कमाल कर दिया। जनता ने जी खोलकर तालियां बजायीं। भीड़ पांच लाख से क्या कम रही होगी और अफसरों की तो घिग्घी बंध गयी। आपने ऐसे आड़ों हाथों लिया कि बस सबकी बोलती बंद हो गयी। अब सारी जिंदगी आपको नहीं भूल पायेंगे।"

मुख्यमंत्री जी ने सिर पकड़ लिया। इसका अर्थ है कि गुप्तचर प्रमुख भी यही मान रहा है कि कल वही दौरे पर थे और उन्होंने ही

सारे कार्यक्रमों को अंजाम दिया था। अब अगर समाचार-पत्र यह मान रहे हैं, उनका निजी सचिव यह मान रहा है और गुप्तचर विभाग भी यही मान रहा है, तो सारा देश और प्रदेश यही मान रहा होगा। इस सबके खिलाफ एक उनकी अकेली आवाज क्या करेगी। मुख्यमंत्री जी ने मन-ही-मन इस डुप्लीकेट नकलची की कला को नमस्कार किया। सचमुच, नकल-विरोधी कानून हटाकर उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया था, जिसके कारण नकल की आदि-कला उनके राज्य में पराकाष्ठा को छू गयी थी। मुख्यमंत्री जी ने राजनीतिक सूझबूझ से विचार किया। सारे देश में उनकी नकल-समर्थक की छवि विख्यात हो चुकी थी। ऐसे मौके पर उनकी नकल करनेवाले को पकड़ा जाये और दंड दिया जाये तो क्या उनकी इस पोषित छवि पर धब्बा नहीं लगेगा! फिर इस नकलची ने अभी उनका कुछ अहित भी तो नहीं किया था। उनके दायित्व का कुछ भार वहन कर लिया था। रद्द हुए कार्यक्रमों को यथापूर्वक चालू कर दिया था। उनको पूर्ण आराम का मौका देते हुए उनके कर्तव्य का निर्वाह सुचारु रूप से कार्यक्रमानुसार कर दिया था। इतनी कलात्मकता और श्रेष्ठता से कि उनके अपनों को भी नकल का आभास नहीं हो सका। मन-ही-मन कृतज्ञ हो उठे थे मुख्यमंत्री जी। पर न जाने क्यों कहीं उनका मन आशंकित हो रहा था। कल को इस नकलची की कला न जाने क्या-क्या रंग दिखाये। क्या गजब ढहा दे।

आगामी व्यस्त दिनों में मुख्यमंत्री जी इस हादसे को लगभग भुला बैठे थे। आशंकित मन समय के साथ धीरे-धीरे नॉर्मल हो गया था। फिर एक दिन ऐसा आया कि अपने ही निर्धारित समय पर सचिवालय नहीं पहुंच सके। मित्रों और परिवारवालों ने हठपूर्वक घेर लिया था। सचिवालय में कुछ महत्त्वपूर्ण फाइलें निबटानी थीं, सो रात्रि को समय मिलते ही मुख्य सचिव को फोन किया। स्वर में खेद था, ''भई, आज फिर फाइलें रह गयीं।''

''कौन-सी फाइलें, सर?'' मुख्य सचिव का स्वर आश्चर्यमिश्रित था।

''वही सब्सिडी और वित्तीय अनुदानवाली।''

''वे सब तो आपने आज निबटा दी थीं, सर।'' मुख्य सचिव ने

याद दिलाया।

मुख्यमंत्री चौंके। पूछा, "आज कब?"

"जब आप दो घंटे के लिए दोपहर सचिवालय आये थे।"

मुख्यमंत्री का मन हुआ कि फोन के चोंगे से सिर ठोंक लें, लेकिन उन्होंने संयत रहते हुए मुख्य सचिव को आदेश दिया, "आप तुरंत सचिवालय पहुंचिये। मैं स्वयं भी अभी वहीं पहुंच रहा हूं।"

'अब रात्रि में?" मुख्य सचिव को बहुत अटपटा लगा।

"जी हां, अभी रात्रि में। यह आवश्यक और अरजेंट है।" मुख्यमंत्री के स्वर में आदेश था।

सचिवालय में मुख्यमंत्री जी ने फाइलों पर अपने हस्ताक्षर देखे। हू-ब-हू उनके हस्ताक्षर थे। कहीं कोई त्रुटि, कमी या गलती नहीं थी। वह स्वयं भी उन हस्ताक्षरों को अपने हस्ताक्षर के रूप में पहचान सकते थे। कोई कमी या भिन्नता नहीं खोज पा रहे थे। सारी फाइलें उसी प्रकार निपटायी गयी थीं, जैसे स्वयं मुख्यमंत्री निपटाते या निपटाना चाहते। मुख्यमंत्री सोच में डूब गये। यह तो नकल की पराकाष्ठा हो गयी। यह व्यक्ति तो बहुत विकट हो गया। यह तो अपनी कला के बल पर कुछ भी कर गुजर सकता है। आकार-प्रकार, रंग-रूप, चाल-ढाल, बोल-चाल और स्टाइल के अतिरिक्त यह तो उनके हस्ताक्षर बनाने में भी निपुण है। मुख्यमंत्री का महत्त्वाकांक्षी मन संभावित खतरे की आशंकाओं में डुबकियां लगाने लगा। उनकी नकल-समर्थक छवि को चाहे जो आघात लगे, इस नकलची कलाकार को तो खोजकर मटियामेट करना ही पड़ेगा, वरना एक संभावित खतरे की तलवार हमेशा उनके सिर पर लटकती रहेगी। क्या ताजमहल बनानेवाले श्रेष्ठ कलाकारों के हाथ हुकूमत ने कलम नहीं करा दिये थे। राजकाज में ऐसे संभावित खतरों को जड़ से नेस्तनाबूद करना जायज होता है।

सेंट-परसेंट टॉप रिजल्ट के परिणाम भी आने लगे। अन्य राज्यों में इन टॉपरों को साक्षात्कार तक के लिए नहीं बुलाया जा रहा था। सरकारी नौकरियों में इन टॉपर डिग्रियों को मान्यता नहीं मिल रही थी कि अपने प्रदेश के टॉपर को रिजेक्ट करके व्यापारिक संस्थान अन्य प्रदेश के तृतीय श्रेणी में पास परीक्षार्थी को नौकरियां दे रहे थे। ऐसा

विस्मयकारी परिणाम मुख्यमंत्री जी की संभावनाओं में निहित नहीं था। जब सारे प्रदेश के टॉपरों ने शोर मचाया तो विक्षुब्ध मुख्यमंत्री ने एक ऊंचे मंच से सर्वोच्च न्यायालय में जाने की कानूनी धमकी दे डाली। इस राजनीतिक पेंतरे से जनाक्रोश पर राहत का ठंडा पानी तो पड़ गया, किंतु वह शांत नहीं हुआ। जनाकांक्षाएं केवल अंतिम परिणाम से तृप्त होती हैं।

उस सुबह जब मुख्यमंत्री ने अखबार पर नजर डाली तो चौंककर बिस्तर से उछल गये। मुखपृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरों में छपा था—'प्रदेश के मुख्यमंत्री ने त्याग-पत्र दे दिया। राज्यपाल ने खेद सहित त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया। पार्टी के विधायक दल ने अपना नया नेता निर्वाचित कर लिया और रात्रि के दस बजे नये नेता को राज्यपाल ने मुख्यमंत्री पद की शपथ दिला दी।'

सिर ठोकते हुए मुख्यमंत्री सरकारी निवास से बाहर आ गये। अब उन्होंने मन-ही-मन कसम खा ली है कि वह कभी नकल का समर्थन नहीं करेंगे। नकल की आदि-कला की जड़ों में मट्ठा डाल-डालकर हमेशा-हमेशा के लिए दफना देंगे और यदि फिर कभी किस्मत से सत्ता हाथ आयी, तो सबसे पहले नकल-विरोधी कानून लागू कर उसका कठोरता से अनुपालन करायेंगे।

अगले जन्म का बंदोबस्त



यमराज के समक्ष सशरीर उपस्थित था मैं। यमराज ने मुझे घूरा, भृकुटि चढ़ाई और प्रश्न दागा, "तुम्हारी तो अभी आयु शेष है। तुम यहां कैसे?"

"भगवन्, एक प्रश्न मुझे बहुत दिनों से मथ रहा था। उसी के समाधान के लिए उपस्थित हुआ हूं।" मैंने अनुनय-विनय किया।

"तुम्हें क्या हो रहा है, यह बाद की बात है। पहली बात यह है कि मृत्युलोक की आत्मा समय-पूर्व स्वर्गलोक में कैसे आयी? किस दूत ने यह अक्षम्य अपराध किया है? उसका निष्कासन आज अवश्यंभावी है।" यमराज गरजे।

मौके की नजाकत को समझ मैं यमराज जी के पैरों में गिर गया, "प्रभो! क्षमा करें। यह अपराध आपके किसी दूत ने नहीं किया है। अपने ही असह्य मंथन से विचलित हो मैं विचारों पर उड़कर आपके दरबार में उपस्थित हुआ हूं। अपने प्रश्न का समाधान होते ही वापस लौट जाऊंगा। आपके विधि-विधान में कोई समस्या पैदा नहीं करूंगा। फिर आऊंगा तो पृथ्वी पर दम तोड़कर ही आऊंगा। बस, इस बार क्षमा कर दें।"

"विचार! हां, विचारों पर तो कोई प्रतिबंध नहीं है। वे किसी भी लोक में विचरण कर सकते हैं। कोई सीमा या विधि-विधान उन पर लागू नहीं होता...लेकिन फिर भी तुम्हें उनका सहारा लेकर यहां नहीं आना चाहिए था। नियम तो तुमने तोड़ा ही है। अपराध तो तुमसे हुआ ही है..." यमराज जी सोच में डुबकियां खाने लगे।

मैंने यमराज जी के चरण कसकर पकड़ लिये, "महाराज, यदि अपराध हुआ है तो मैं दंड का भागी हूं। आप मेरे लेखे-जोखे में यह अपराध भी चढ़ा लीजिए। जब मरणोपरांत पुनः आऊंगा तो अन्य अपराधों के साथ इसका भी दंड दे दीजियेगा, पर कृपया इस समय आप मेरे प्रश्न का उत्तर देकर मेरे हृदय-द्वंद्व को शांत कीजिए।"

पता नहीं मेरी अननुय-विनय का असर हुआ या मेरे दंड भोगनेवाले तर्क ने उन्हें प्रभावित किया था, यमराज जी कुछ पसीजे। बोले, "प्रश्न कहो। हम जल्द-से-जल्द तुम्हें वापस भेजना चाहते हैं।"

मैं जैसे अभयदान पा सीधा खड़ा हो गया। गिड़गिड़ाया, "प्रश्न बड़ा ही सीधा-सा है। आपके लिए तो बिलकुल भी मुश्किल नहीं है। रोज का काम है। आपका कुछ जायेगा नहीं और मेरा लाभ हो जायेगा।"

"भूमिका नहीं। सीधा प्रश्न करो।" यमराज जी फिर गरजे।

मैं सकपका-सा गया। अरसे से कुलबुला रहे प्रश्न को शीघ्रता से उगल दिया, "बस यह जानना चाहता था कि अगले जन्म में मुझे कौन-सा चोला पहनाया जायेगा?"

यमराज जी के माथे पर बल पड़ गये। चेहरे पर तनाव आ बिराजा, दंड पर रखी मुट्ठी कस गई। गुस्से से कोई बात फूट निकलना चाह रही थी, जिसे वह सप्रयास रोक रहे थे।

मैंने पुनः याचना की, "प्रभो! मेरी यह अकिंचन-सी जिज्ञासा है। इसकी पूर्ति से आपका तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, मेरा भला हो जायेगा। कृपया अपने सेवक की जिज्ञासा शांत करें।"

यमराज जी अपने प्रयास में अंशतः सफल होकर पुनः गरजे, "मनुष्यात्मा, तुझे ज्ञान नहीं है कि तू पुनः अपराध कर रही है। घोर अपराध। गंभीर अपराध। अक्षम्य अपराध।"

"वह कैसे? पृथ्वीलोक में तो सभी आत्माएं विद्वान् ज्योतिषियों से पुनर्जन्म के बार में पूछती रहती हैं। कभी किसी धर्माचार्य, ऋषि-मुनि या शास्त्री ने इसे दंडनीय नहीं बताया। भूलोक के ज्योतिषी थोड़ा भ्रमित ज्यादा कर देते हैं। उनकी बातें अकसर गलत निकलती हैं। विश्वास नहीं आता। इसलिए सही और करेक्ट सूचना लेने के लिए सीधा आपके पास चला आया। इसमें अपराध क्या है?"

"तुम यमलोक के रहस्यों को जानना चाहते हो। विधाता के विधि-विधान में टांग अड़ाना चाहते हो। जानते हो यह कितना बड़ा अपराध है?"

"प्रभो, आप मुझे गलत समझ रहे हैं। मैं न यमलोक के रहस्यों को भेदना चाहता हूं और न विधाता की महान रचना में कोई रोड़ा बनना चाहता हूं। मुझे तो केवल अपने से मतलब है। अगर पता चल जाता कि अगले जन्म में क्या बनना है, कहां रहना है तो पहले से कुछ तैयारियां कर लेता। आपका कुछ जाता नहीं और मेरा अगला जन्म सफल हो जाता। बस।"

"क्या मतलब?" यमराज जी थोड़ा-सा विस्मयग्रस्त हुए। शायद वह अभी मेरा प्रयोजन नहीं पकड़ सके थे।

मैंने विस्तार से बताना उचित समझा, बिना कन्विंस हुए वह भी थोड़े ही उगलनेवाले थे, "प्रभो, मैं अपनी बात विस्तार से खुलासा कर दूं। आप जानते हें कि मृत्युलोक गंभीर रूप से अभावग्रस्त है। इसमें आज के थापे आज ही नहीं पकते हैं। फल बहुत-बहुत समय बाद मिलता है। और तो और, पेड़ों पर भी फल कई-कई साल बाद आते हैं। ऐसे में फिर से पुनर्जन्म की नयी जिंदगी शुरू करने में अभावों को झेलना पड़ सकता है। अगर यह पक्का पता चल जाये कि पुनर्जन्म कहां होगा तो इससे मैं बच जाऊंगा।"

"सौ कैसे?" यमराज जी भी अब शायद जिज्ञासु हो गये थे।

"सीधी-सी बात है। मैं अपने इस जन्म की सारी कमाई नये जन्मवाले परिवार को ट्रांसफर कर दूंगा। पक्की वसीयत लिख दूंगा। घर-मकान, जमीन, जायदाद—सभी मेरे मरने के बाद मेरे भावी पिता जी को ट्रांसफर हो जायेगी। थोड़ा से गिफ्ट टैक्स देकर मोटी-मोटी

गिफ्ट भी की जा सकती है। इन्कमटैक्स वाले भी कुछ नहीं बोलेंगे। अगले जन्म में बचपन से ही मौज आ जायेगी।"

यमराज मुसकराये। विद्रूप भरी मुसकान। शायद मेरी अल्पज्ञता पर मुसकरा रहे थे। बोले, "बच्चा, तुम बहुत बुद्धू हो। तुम्हारी इस बेवकूफी पर हमें हंसी आ रही है।"

"क्यों, भगवन्?" मैं उनकी बात नहीं समझ पाया था।

"इस जन्म की कमाई तो तुम्हें हम ही दे देंगे। ऐसा ही विधान है। इसके लिए तुम्हें व्यर्थ प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है।"

"यानी मैंने जो शानदार मकान बनवाया है, वह मुझे अगले जन्म में भी मिलेगा? देखिये, मुझे सुविधा में रहने की आदत-सी हो गई है।" मुझे यमराज की बात पर अचानक विश्वास नहीं हो रहा था।

"वह मकान क्या तुम्हारे इस जन्म की कमाई है?" यमराज जी ने समाधान करने के स्थान पर प्रश्न उछाला।

"क्यों मजाक करते हैं, प्रभु, यह मकान मैंने इसी साल तो बनवाया है। पिछले ही साल इसकी आमदनी पर साठ प्रतिशत इन्कमटैक्स भरा है। मेरे पास पक्का सरकारी सबूत है कि यह मेरी पिछले साल की कमाई है, फिर यह इस जन्म की ही कमाई हुई ना?" मैंने अपनी ओर से सप्रमाण तर्क प्रस्तुत किया था।

"तुम्हारे इन्कमटैक्स से सृष्टा का विधान प्रभावित नहीं होता। तुम्हारा नया मकान तुम्हारे पूर्वजन्म का अर्जन है, वह तुम्हारे पूर्वजन्म के सद्कर्मों का सुफल है। अगले जन्म में तुम्हें इस जन्म के कर्मों का फल मिलेगा।"

मैं अवाक् रह गया। सृष्टा के विधान का यह गोरखधंधा मेरी बुद्धि को नहीं भा रहा था। सो मैं अपने प्रयोजन के लिए पुनः सचेष्ट हुआ, "प्रभो, सृष्टा के विधि-विधान की बात छोड़िये। उससे भला कौन पार पा सका है। वह तो यथावत् रहेगा ही। अगर अगले जन्म की पक्की सूचना मिल जाती तो मेरा उद्धार हो जाता। कुछ अपनी ओर से मैं भी बंदोबस्त कर लेता और इस जन्म में क्या, अगले जन्म में भी बस आपके ही गुणगान करता।" मैंने फिर यमराज को मस्का लगाया।

पर यमराज जी बहुत चिकने निकले। बोले, "पहली बात तो हम किसी भी प्राणी के अगले जन्म का रहस्य नहीं खोल सकते। दूसरा, तुम्हारी इस जन्म की आयु अभी शेष है। तुम अभी कुछ कर्म और कर सकते हो, अतः तुम्हारे अगले जन्म का पूर्ण निर्धारण अभी नहीं हुआ होगा। और तीसरा, अगर मैं तुम्हें बता भी दूं तो इसका तुम्हें कोई लाभ नहीं मिलनेवाला है।"

"लाभ भला क्यों नहीं मिलेगा? मेरी योजना है कि मैं अपनी संपत्ति उस परिवार को वसीयत कर दूंगा, जिसमें मेरा अगला जन्म होनेवाला है, फिर तो लाभ मिलेगा।" मैंने अपनी योजना स्पष्ट की।

यमराज जी पुनः मुसकराये, "मूर्ख, यदि वह संपत्ति तुम्हें अगले जन्म में नहीं मिलनी होगी, तुम्हारे कर्म-फल में वह तुम्हारे भाग्य में नहीं होगी, तो तुम्हारे जन्म से पहले ही तुम्हारे नये परिवारवाले उसे बेच खायेंगे। और भी कुछ न हुआ, तो जब तक तुम नाबालिग होगे, तब तक तुम्हारे भावी पिता जी उसे खुर्द-बुर्द कर देंगे। तुम्हारे पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा।"

यमराज जी की शंका निर्मूल नहीं थी। समस्या के इस पहलू पर मैंने गौर ही नहीं किया था। उन्होंने तो एक ही शंका से मेरी योजना का सारा महल ध्वस्त कर दिया था। मैं पुनः यमराज के चरणों में लोट गया। "प्रभो, आपने तो मेरी आंखें खोल दीं। अब आप ही मेरा उद्धार कीजिए। मैं समझ गया कि नये जन्म का पता-ठिकाना जानने से भी कुछ नहीं होनेवाला है, बस अब तो आप मुझे यह बता दें कि मैं कैसे कर्म करूं कि अगले जन्म से सभी सुख-सुविधाओं का विधानसम्मत अधिकारी बनूं।"

यमराज जी ने सहारा देकर मुझे उठाया, "वत्स, अब तुम सही रास्ते पर आये हो, उठो। जो तुम जानना चाहते हो उसकी सही जानकारी मेरे पास नहीं है, चित्रगुप्त के पास है। वही कर्मों का लेखा-जोखा रखते हैं। मुझे तो बस मोटी-मोटी बातें पता हैं कि पुण्य कर्मों का अच्छा फल मिलता है। तुम पुण्य कर्म करो।"

"पर प्रभो, मुझे तो यह ज्ञान चाहिए कि अगले जन्म में शानदार बंगला किन खास कर्मों से मिलता है और कलर टी.वी., वी.सी.आर.,

फ्रिज आदि किन-किन विशेष कर्मों का प्रतिफल होता है। यह विशेषीकरण का जमाना है, सारे पुण्य-कर्मों में तो मैं भटक जाऊंगा। मुझे तो अपने लायक जुगाड़ करना है। अतः कुछ खास-खास टिप्स देने की कृपा करें तो अनुगृहीत रहूंगा।" मैंने अपना मंतव्य प्रकट किया।

"यह ज्ञान तो चित्रगुप्त पर ही है।"

"तो प्रभो, उनका ही पता बता दो।" मैं फिर गिड़गिड़ाया।

"तुम्हें मेरा पता किसने बताया था?" यमराज जी ने भृकुटि चढ़ायी।

"वह तो मैं स्वयं विचारों पर चढ़कर चला आया था।"

"तो चित्रगुप्त पर भी विचारों के सहारे पहुंचो। उनका पता बताकर मैं तुम्हारे साथ अपराध में सहभागी नहीं हो सकता।"

यमराज जी ने पते की बात कही थी। साधन मेरे पास उपलब्ध था, फिर यमराज जी को क्यों कष्ट दिया जाए। अतः मैं श्री यमराज जी का आभारी हो, उनके चरण स्पर्श कर, उनके गुणगान करता हुआ पुनः पृथ्वी पर लौट आया। निश्चय किया कि अपनी समस्या के समाधान के लिए उचित समय पर चित्रगुप्त जी की ओर उड़ान भरूंगा। मेरी समस्या की कुंजी उन्हीं के पास मिलेगी, बशर्ते वह भी स्वर्गलोक के रहस्य-भेदन का वास्ता देकर मुझे टालू मिक्सचर न पिलायें।

